

सत्यम् शिवम्

वरयिना

मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

मम्यान्त

मुनिश्री विनयकुमारजी 'अलोक'

प्रसागत

श्रीमती भंवरीदेवी सेठिया

मुजागद (गान्ध्यान)

प्राप्ति-स्थान

श्रीमती भंवरीदेवी सेठिया
धर्मपत्नी श्री नेमीचन्दजी सेठिया
द्वारा—श्री हनुतमलजी तोलारामजी सेठिया
सेठिया हाउस
सुजानगढ़ (राजस्थान)



प्रथम संस्करण

अक्टूबर १९६७



मूल्य एक रुपया



मुद्रक :

उद्योगशाला प्रेस,
किंग्सवे, दिल्ली-६

प्राक्कथन

मत्य शब्दातीत है। उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। जो व्यक्त किया जाता है, वह या तो सत्याश है या सत्य से व्यनिरिक्त। मत्य अनुभव-सापेक्ष है। जो अनुभूत है, वह व्यक्त का परिधान नहीं पा सकता। जो देखती है, वह बोलती नहीं। जो जानती है, वह दखती नहीं। इमीलिए दर्शन और वाणी का मेन नहीं हो पाता। व्यक्ति ग्रहण रह जाता है। पूर्णता का वह दम्भ भर सकता है, पर तब तक वह पूर्ण नहीं है। मत्य को भी जब शब्दों का चोगा पहनाया जाना है, हम कह उठते हैं, हमने मत्य का माक्षाकार कर लिया, पर यह उसके साथ आत्मिचौनी है। बच्चे बहुधा आत्मिचौनी खेलते हैं। थोटी-मी ओट में छुप कर जाँग मूँद लेते हैं। उन्हें यह अनुभव हो जाना है, अब हमें कोई नहीं देखता। खेल आरम्भ हो जाता है। यही स्थिति बटुधा माधक की होती है। कुछ दिन आगे मूँद कर जामन जमाया और प्रतीति करने लगते हैं 'हमने मत्य को पा लिया।' साजक-जवस्था में ऊपर उठ गये हैं। वहीं मत्य उनसे फूट कर दूर भाग जाता है। फिर वास्तविकता को झुठलाने का प्रयत्न आरम्भ होता है। सत्य का मूल स्वर्ण, स्वार्थ आदि में पिहित हो जाता है।

जब सब कुछ भूलकर स्वयं में स्थित हुआ जाना है, मत्य स्वयं के परिपार्श्व में चतुरङ्गदमी बगना हुआ मिलता है।

सत्य को पाने की अत्यन्त आतुरता व्यक्ति को उससे दूर करती है, क्योंकि आतुरता व्यग्रता है और वह स्वभाव से किनारा कसती है ।

सत्य की परिणति शिव है । वहां कुछ अवशेष नहीं है । क्रिया की परिसमाप्ति होकर अक्रिया में परिणति है । कृत का नाश हो चुकने पर वहां अकृत का व्यापार है । केवल जातृ-भाव है । न विकास है और न ह्रास । न आगमन है और न निर्गमन । न प्रकाश है और न ग्रन्थकार । न विजनता है और न सकीर्णता । विभाव नहीं है, केवल भाव है । उत्कर्ष और अपकर्ष का अभाव है । परिचय और अपरिचय की स्थिति ही समाप्त है ।

सत्यमय होने के लिए आत्मा को, आत्मा के लिए, आत्मा के द्वारा, आत्मा में अधिष्ठित किया । अव्यक्त कुछ-कुछ व्यक्त हुआ । उसे शिव की ओर बढ़ना चाहिए था, पर वह शब्दों के घेराव में आ गया । प्रयत्न करने पर भी वह घेराव समाप्त नहीं हुआ । इस संघर्ष में सत्य शब्दों की पकड़ में आ गया । परिणामतः शब्द विजयी हो गये । 'सत्यम् शिवम्' उसी का परिणाम है ।

अनुभूतियों ने जब-जब शब्दों का अनुगमन किया, कुछ पछ बन गये । पछ बनाने को मैं कभी उतावला नहीं हुआ और न कभी इस दिशा में प्रयत्न करना अपेक्षित ही माना । व्यवहार ने जब कभी ऐसा चाहा, कुछ बन गया । कुछ व्यक्तियों ने समय-समय पर चाहा, भजन लिखे जाये, पर यह

चाह में ऊपर की जान है। चाह में वृत्तिमत्ता का भाव रहता है। मुझे यह कनट नही मचना। इसलिए मेरी चाह भी निरत रही। फिर भी बिना प्रयत्न ही ओ-अनायास ही किसी मजिद पर अवश्य पहुँच गया हूँ। किन्तु यह मजिद मुझे अभिप्रेत न थी, न है और न भविष्य में ही रहेगी। जन्म-मोक्ष केवल ज्ञान ही है कि शुद्ध स्थिति के गुण-वाचपण-मण्डल में मैं पहुँच गया हूँ। अब मुझे यही परिक्रमा करनी है। उन भावों को यदि आत्मज्ञान कर नया नो अपने लिये, अपने हाथों, अपने ही द्वारा उद्घाटित होंगे। 'मन्यम् शिरम्' की तात्परता का यही उद्देश्य है।

१४ अगस्त, १९६७

नगर (राजस्थान)

—मुनि महेंद्रकुमार 'प्रथम'

अनुक्रम

गीतिकाएँ	पृष्ठ
१. प्रातः उठकर नुद्ध भाव में	१
२. ऋषभ जिनेश्वर तारों	३
३. वभय दो प्रभुवर पार्श्व जिनेश !	४
४. त्रिदला-दुलारे प्रभु वर्धमान स्वामी के,	५
५. द्रष्टा-भाव बड़े जीवन में,	६
६. वीर की वाणी पर,	७
७. गीतम गणधर धीर,	८
८. मर्यादा पुरुषोत्तम सीतापति	९
९. भन्ते ! करता जन-जन अभिवन्दन,	१०
१०. जय बोलो भिक्षु प्रभुवर की	१२
११. श्री भिक्षु के चरण में उपहार नव मझाऊ	१३
१२. जय-जय भिक्षु-भिक्षु भगवान्	१४
१३. भगवन् ! तुम्हारी हम सब यह आरती सभायें	१५
१४. शासन-भक्त प्रभो ! हम तेरे	१६
१५. प्रभो ! ससार मागर मे लुट्कती नाव खे देना	१७
१६. साधना मे लीन हो उन्मेष पाए हम	१८
१७. अपना रूप निहारो	१९
१८. मुझे एक आत्मा का सही जान हो वस,	२०
१९. आत्म-रूप को पाना ही वस सार है	२१
२०. है यही सकल्प सबका साधना की लौ जले	२२
२१. साधो ! हो अपने मे लीन,	२३
२२. तन्मय होकर के साधना करो,	२४

२३	क्षण भी प्रमाद मत करना	२१
२४	यह स्वाथ का पुनरा मनुज है	२६
२५	मानव जीवन का मान	२७
२६	मनुज है स्वाथ का पुनरा उसे नहीं जान पाये हम	२८
२७	प्राणी करता जब नन में ममता,	२९
२८	तीर्थार नाम कम जजन के बीच निमित्त बनाय है	३०
२९	जो भाग्यवासी ! मर्य अहिमा उन माने अपना आ	३१
३०	रखना मानवता का ध्यान	३२
३१	मर छोटी माया रे	३३
३२	ए मानव ! उठ तू शील मुधारम पी ले तमय हाकर	३४
३३	तू जाग रे ! मुनानी यह बाल आ रहा है	३५
३४	पर शुभ जाया है, सवस्मर का आज	३६
३५	पर्यूपण जाया ज्योति जगाओ धम-ध्यान की	३७
३६	ह मर्य रीट जीवन की टमका	३८
३७	मयम है जीवन की उननि का मोघा मोपान	४०
३८	अनासक्ति की शुभ साधना जीवन शुद्ध बनानी है	४१
३९	मन को मरन बनार,	४२
४०	विनय है जित-गामन का मूर	४३
४१	आवक माग कमर कमो अब, जाया चौमाया	
	अवधार्या	४४
४२	आयो चौमामो आत्म-मदन उजगार्या	४५
४३	कर आत्म शक्ति नै के द्रित मामूहिक तप मर	
	आरम्भ कर	४७
४४	आदिम रात्रि में परिवार माग मगलकारी	४८
४५	भीखणजी स्वामी मगलकारी थारा नाम है	४९
४६	भारीमान भगवान् ! थाने पल पर ध्याऊ मैं	५०

८७. पल-पल व्याऊ रायचन्द गणिराज	...	५१
८८. म्हांगी भगनी की भेट गीकारो,	...	५२
४९. शरणो मधवा रो,	...	५३
५०. माणक प्रभुवर रो नाम बडो जयकारी	..	५४
५१. डालिम गुरु दिल मे बसिया जी	५५
५२. कालू कालजै री कोर. म्हांगे हार हीयारो	...	५६
५३. पल-पल गुरु तुलसी व्यावो,	...	५७
५४. धोरी शासण रा.	...	५८
५५. पायो स्वामीजी रो शासण, आपां भाग्यशाली रे	.	५९
५६. पा तेरापथ महान्.	६०
५७. साधक सारा देखो आतमा म्यू आतमा.	...	६२
५८. धन्य वोही नर साधना जो सफल करै	..	६४
५९. मानवी ! मत धूकी रे तू अपणी चाल नै	.	६५
६०. साची साधना रो दीप जगाकर,	...	६६
६१. कुछ कारण स्पष्ट बतावो,	.	६७
६२. सारी घटना रो भेद बतावो,	.	६९
६३. छोडो छोडो छोडो रे थावरचा रा कवरा	..	७१
६४. सजग रहीजे संयम मे दिन रात तू		७३
६५. तपस्यारी भाचा (१)		७४
६६. तपस्यारी भाचा (२)		७७
६७. है राम नाम जग-त्राता	...	७९
६८. म्हारै आज पधार्या मुनिवर,	...	८०
६९. जाते ही है जबकि हमको लुभाकर	..	८१
७०. मिगसर वैरी वेगो क्यू आयो रे	.	८२
७१. आज बिहार करै मुनिराज		८३
७२. साधु-वन्दना	.	८४
७३. तपस्यारी भाचा (३)		८६

पैसठ महापुरुषों की स्तवना

[तज—जाने वो कैसे लोग थे जिनके]

प्रातः उठकर शुद्ध भाव में जिनवर व्यास पर ।
तन-मन सब अपण कर उनसे ज्योति प्राप्त करू ॥
ऋषभ, अजित, मम्भव, अभिनन्दन, मुमति, पद्म मोल्लाम ।
श्री मुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, मुविधि, भीतल, श्रीश्रेयास ।
वासुपूज्य, श्री विमलनाथ के पावन चरण पर ॥१॥
अनन्त, धर्म, जिन शान्ति, कुन्धु, अर, मल्लिनाथ भगवान् ।
मुनिमुद्रत, नमि, नेमि, पार्श्व प्रभु, महावीर धृतिमान् ।
गौतम आदि ग्यारह गणधर का मैं नाम स्मरू ॥२॥
प्रभो मुपर्मा, जम्बू स्वामी, मद्रवाहु गणधार ।
स्थूलिभद्र, ध्यामायं, वज्र स्वामी मेरे आधार ।
उनका ले अवलम्बन भव-जलनिधि को भीघ तरू ॥३॥
घन्ना, शागिभद्र, ढढण ऋषि, धर्मरुचि अनगार ।
स्कन्दरु, भरन, मेतार्यं, बाहुवल, मुनिवर गजसुकुमाल ।
उनसे कर वरदान प्राप्त मैं भव-भय-पीर हरू ॥४॥
चन्दनवाला, राजिमती, कौशल्या, जनक-मुता ।
शिवा, मुन्दरी, सुलसा, ब्राह्मी, कुन्ती, द्रुपद-सुता ।
प्रभावती, दमयन्ती के गुण निज में सदा भरू ॥५॥

मर्यादा पुरुषोत्तम भिक्षु, भारी, ऋषिवर प्राण ।
 जयाचार्य, मघ, माणक, डालिम, कालू, तुलसी त्राण ।
 अमी, भीम, शिव, कोदर से मैं पावन बोध वरुं ॥६॥
 विघ्न-विनाशक मंगल-कारक जिनवर-गुरुवर-जाप ।
 हो तल्लीन "महेन्द्र" करुं मैं; हो जाऊं निष्पाप ।
 वढूं साधना-पथ पर कष्टों से तो नही डरुं ॥७॥

२

[तर्ज—प्याने पठी नील गगन]

ऋषभ जिनेश्वर तारो ।

शरण पड़ा हू प्रभो । तुम्हारी भव में पार उतारो ॥

न-पुन नश्चेष्ट, अतः तुम ऋषभ वृषभ कहलाये ।

राजा प्रथम, प्रथम ही मुनिवर, प्रथमाहृत पद पाये ।

ननमस्तर जग है चरणों में, उमकी अरति निधारो ॥१॥

प्रभो । तुम्हारे द्विज में मेरा वाम न है मग्भावित ।

हो यदि वाम तुम्हारा तो मन मेरा हो आप्लावित ।

मेरे मलिन हृदय की ओर न दृष्टि प्रभो । तुम टारो ॥२॥

ज्यों ही दृष्टि टिकेगी मुख पर, त्यों ही विकृति हटेगी ।

होगी शुद्ध चेतना मेरी, शुभ आभा निगरेगी ।

जान भस्म चरणों का मुखको अपना विन्द विचारो ॥३॥

अन्य देवता कोप-प्रनुग्रह में त्रय अतिशय भावित ।

उनमें मेरा तो न कनी वन्याण प्रभो । मग्भावित ।

भूनि 'महेन्द्र' अपने मस्तों की नाय । न कनी विचारो ॥४॥

: ३ :

[तर्ज—सभापति आप मिले मतवान]

अभय दो प्रभुवर पार्श्व जिनेश !

हे शिवदायक ! हे अभयंकर ! दूर करो सब क्लेश ।

पुरिसादाणी चिन्तामणि हो,

तिमिर-नाश-हित तुम दिनमणि हो,

जन-जन के हृदयेश ॥१॥

सकट में भी धैर्य न डोले,

द्वार विजय का साहस खोले,

दो यह वर करुणेश ॥२॥

कोई व्याधि न होती तन पर,

भूत-प्रेत की छाया न मन पर,

तेरा जहां निवेश ॥३॥

आत्मिक अनुशासन में रत हों,

भौतिकता से सहज विरत हों,

दो यह शक्ति विशेष ॥४॥

वाराणसी की पुण्य धरा पर,

अश्वसेन-वामा घर अवतर,

पावन किये प्रदेश ॥५॥ -

दिये कमठ ने भीषण परिषद,

आत्मलीन उनमें प्रतिपल रह,

तोड़े कर्म अशेष ॥६॥

पद्मावती चरणों में रत है,

श्री धरणेन्द्र "महेन्द्र" प्रणत हैं,

सारो काम हमेश ॥७॥

४

[तत्र—सघ के मितारे श्री श्री चरणों में]

निगला-दुलारे प्रभु वर्धमान स्वामी के,
 चरण-कमल में प्राण चढाएँ ।
 छोड़ राज्य-वैभव सारा, परिवार छोड़ कर,
 व्यान की सुन्दर ली जलाई ।
 चारह वर्ष तेरह पल तन की सभाल छोड़,
 आत्मा की अमली आभा है पाई ॥१॥
 जाना मचेतन को तो जाना अचेतन भी,
 नई धर्म की, की व्याख्या ।
 मुखरित हुआ धोप शुद्ध अहिंसा का,
 जानी जगत ने मैत्री की आख्या ॥२॥
 तारा उदाई को तो तारा था अर्जुन,
 रोहिण्य को भी तारा ।
 मान बढ़ाया तुमने पूणिये श्रावक का,
 चन्दनवाला को दुख से उबार ॥३॥
 देव तुम्ही हो सबके, ध्येय तुम्ही हो,
 गेय, श्रेय, प्रिय सब जग के ।
 बिना तुम्हारे अभिधेय भी न बनता,
 परम तुम्ही हो इस चेतन के खग के ॥४॥
 श्रद्धा-सुमन शुभ चरणों में अर्पित,
 करके तृप्त सब है होते ।
 मायना को मफल 'महेन्द्र' बनाकर,
 पाप-नाप क्षण में ही विगोते ॥५॥

: ५ :

[तर्ज—पाटी वरतो]

द्रष्टा-भाव वढ़े जीवन में,
(तो) सहजानन्द मिले क्षण-क्षण में ।

सार साधना का यह उत्तम ।

महावीर भगवान् का, हों,
वर्धमान भगवान् का ।

सारा जग आभारी ॥१॥

श्रद्धा का अपने पर होना,
पर-भावों को सहज विगोना ।

दुर्लभतम है धर्म-मर्म यह ॥२॥

आत्मा की स्मृति रहे प्रतिक्षण,
नगरवास हो चाहे कानन ।

विस्मृति का हो विलय; घोष यह ॥३॥

विनय सहज गुण है आत्मा का,
जिसमें अंकन परमात्मा का ।

फिर क्यों भेद-भाव रह पाये ॥४॥

शून्य विकल्प-वितर्क भाव से,
होकर निखरे शुभ स्वभाव से ।

“मुनि महेन्द्र” यह स्वर्णिम पथ है ॥५॥

[तज—हरि गुण गाय लै रे]

वीर की वाणी पर, हो हम सब बलिदान ।
 वीर की वाणी पर, हो हम सब कुर्वाण ।
 उद्यत यदि हम हो रहे हैं करने निज कल्याण ॥
 भाग्य भगीसे छोड़कर हम यो खोये निज मरव ।
 पुष्पार्थी बन साग्रना मे पहचानें शुभ तत्त्व ॥१॥

किन्तु त्रिया की बहलता का फल न पाये जाल ।
 छुप जाती जिसमे महज ही शुभ चिन्तन की लाल ॥२॥

महनशीलता का दिसायें अन्युत्पट आदर्श ।
 महे मदा ही अन्य को आ पाये ना आमर्ष ॥३॥

मुग्ध-दुःख मे माध्यम्य होकर रहे स्वयं मे लीन ।
 तभी न फूटें हर्ष मे हम, हो न रुष्ट मे दीन ॥४॥

हम सब की शुभ माग्राना के हैं आधार जिनेन्द्र ।
 तन-मन अपेण कर चरण मे निगरे मदा 'महेन्द्र' ॥५॥

: ७ :

[तर्ज—माढ]

गौतम गणधर धीर, भव-सागर से तारो जी ।
 निर्मल गंगा-नीर, सारी विपदा टारो जी ।
 विपदा टारो सारे जग की, छा जाये आनन्द ॥
 'मैं हूँ भक्त तुम्हारा प्यारा, तुम मेरे भगवान् ।
 होकर लीन चरण में प्रतिपल, ध्याऊँ निश्चल ध्यान ॥१॥
 मेरे जैसे भवत तुम्हारे होंगे नाथ ! अनेक ।
 पर मेरे तो रोम-रोम में छाये तुम ही एक ॥२॥
 लब्धि-पुञ्ज पावन चरणों में बनकर रहता दास ।
 सर्व सिद्धियों और सफलताओं के हो आवास ॥३॥
 वीर जिनेश्वर के थे तुम ही अन्तेवासी शिष्य ।
 वे स्मृतियाँ सरसा मैं कर पाऊँ निर्वाध भविष्य ॥४॥
 मन चिन्तित होते हैं सारे, जिनके तुम हो इष्ट ।
 शीघ्र "महेन्द्र" बड़ेगा अपने पथ पर श्रद्धानिष्ठ ॥५॥

[तर्ज—ठठ जाग मुसाफिर भोर भट]

मर्यादा पुस्तोत्तम नीनापति पूज्य रामकी जय हो जय ।
 दशरथ-नन्दन, लक्ष्मण-अग्रज रघुकुल-ललाम की जय हो जय ॥
 लाखों नर ध्यान लगाते हैं, तन्मय होकर गुण गाते हैं ।
 प्रतिदिन सब रटने लगाते हैं, नयनाभिगम की जय हो जय ॥
 पा पितृप्रवर का अनुशामन, वन चले, छोड़ जो सिंहासन ।
 उन निर्विकार निर्मोह मनातन परमधाम की जय हो जय ॥
 लघु बन्धव को जो प्यार दिया, जनता को जो आधार दिया ।
 मत्र जग का है उद्धार किया, उन विश्वनाम की जय हो जय ॥
 सुग्रीव सखा को मुक्त किया, विभीषण को था राज्य दिया ।
 हनुमान भक्त को धन्य किया, साकेत-श्याम की जय हो जय ॥
 उन्मूलन कर अन्यायो का, सर्वधन करके न्यायो का ।
 जो बने कीर्ति के अधिकारी, उन मोक्ष-धाम की जय हो जय ॥
 अशरण के शरण विश्व-बन्धु, जन-जन-श्रद्धा के केन्द्र बिन्दु ।
 अध्यात्म-शक्ति के स्रोत, तपोमय राम-नाम की जय हो जय ॥
 श्रद्धा-सुमती का उपढीकन, चरणों में अर्पित जीवन-धन ।
 स्वीकार 'महेन्द्र' करो, गाऊँ प्रतियाम राम की जय हो जय ॥

: ६ :

[तर्ज—झूठी-झूठी दुनिया का प्रीत है]

भन्ते ! करता गत-गत अभिवन्दन,
थट्टा कुमुमों से वन्दन ।

पतितोद्धारक सच्चे भगवान्.....हो !
हो स्वामी नयनों के तारे तुम महाप्राण हो ।

लोक-प्रकाशक धर्म-उजागर तीर्थकर विज्ञानो,
अमाश्रमण गंभीर सिन्धुवत् निर्मल आत्मध्यानी ।

भन्ते ! सूरज से भी तेजस्वी,
रजनीपति सम वर्चस्वी,
असहायों के तुम ही तो त्राण...हो ! ॥१॥

धूत रजोमल क्षीण जरामर लोकोत्तम अविकारी—
सिद्ध ; निरामय आत्म-सुधामय अर्हन् केवलधारी ।

प्रतिनिधि उनके हैं गण अधिनेता,
हैं उपाध्याय मद-जेता,
मुनिवर का स्मरण परम सोपान...हो ॥२॥

नर-सुर-पूजित ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन सारे ।
सुमति, पद्मप्रभ, श्री सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ प्राण-पियारे ।

सुविधि, शीतल, श्रेयांस जिनेश्वर,
श्री वामुपूज्य, विमलेश्वर,
मानवता के सच्चे सम्मान...हो ॥३॥

अनन्त, धर्म, जिन शक्ति, कुथु, अर, मल्लो, मुन्नत स्वामी ।
नमि, नेमि, घग्णेन्द्र सुमेवित पारम अन्तर्यामी ॥

त्रिशलानन्दन हैं भाग्य विधाता,

तीर्थकर प्रभुवर वाता,

मेरी वीणा की मुमधुर तान हो ॥४॥

विहरमान जो बीम सीमधर आदि, देव हैं मेरे ।

ग्यारह गणधर गौनम प्रभृति निज-पर-आत्म-उजेरे ॥

जहंद्-जाणो के हैं उद्गाता,

त्रिपदी के पहले स्नाता,

जिन पर होता मात्त्विक अभिमान हो ॥५॥

धूमिल आवत स्वार्थ-रेणु मे महावीर का शमन—

हुआ जा रहा था, तब आये दीपा माँ के नन्दन ।

शिथिलाचारो की जटे कुन्दी,

स्वाध्यायी आत्म-प्रवेदी,

पाया था अक्षय बोधि-निधान हो ॥६॥

भारिमाल, ऋपिराय, जीत, मध, माणक, डालिम, कालू ।

तुलसी महामहिम श्रद्धाम्पद शान्त सुखा-स्पृहालु ॥

गिन्ती मानवता के उन्नायक,

जन-जन के भाग्य विधायक,

अविनाशी रहते स्वर्ण-विहान हो ॥७॥

विघ्न-विनाशक मंगलमय आरोग्य बोधि के दाता ।

मन-ममाधि के नष्टा परमेष्ठी पचक हैं राता ।

पाता उनको कृपया ही मिट्टि,

‘भुनि महेन्द्र’ नव ऋद्धि,

होता प्रति चरण सदा कन्याण हो ॥८॥

: १० :

[तर्ज—जै बोलो महावीर स्वामी की]

जय बोलो भिक्षु प्रभुवर की
 प्रभुवर की जय गुरुवर की
 श्री तेरापन्थ अधीश्वर की ।

वह पुरुषसिंह, पुरुषोत्तम था
 नर पुण्डरीक लोकोत्तम था
 हम प्रणति करे उस मतिधर की ॥१॥

वह गन्ध गजेन्द्र, सुरेन्द्र-समान
 वह तीर्थकर था, पुरुष-प्रधान
 अनुगति हो सब-पुरन्दर की ॥२॥

स्वयबुद्ध था, बोधि-निधान
 भाग्य-विधाता था भगवान
 हम भक्ति करें गण-दिनकर की ॥३॥

दृढ़तर सगठन-विधान किया
 धार्मिक जग को आह्वान किया
 कर स्मृतियाँ प्राक्तन व्यतिकर की ॥४॥

वह लोहपुरुष था शासन में
 पर कोमल आत्म-विकासन में
 जय हो 'महेन्द्र' उस श्रीधर की ॥५॥

११

[तर्न—दो ढिल कहीं से लाऊँ]

श्री भिक्षु के चरण मे उपहार नव सभाऊँ ।

नैवेद्य भक्ति का ले मैं भाव मे चढाऊँ ॥

मेरे मन मे मूर्ति तेरी भगवन् । सजी हुई है ।

श्रद्धा-मुमन चढाऊँ मे अपनी साथ पुराऊँ ॥१॥

वीणा-विहीन कर हैं, नूपुर भी ना चरण मे ।

विखरे विचार दिल के, उनमे ही ध्यान लगाऊँ ॥२॥

माधना की बलि-वेदी पर, तुमने प्राण थे चढाये ।

शुभ क्षेत्र मान उसको सस्कार मे जगाऊँ ॥३॥

आदर्श जो तुम्हारे जग मे सदा समाये ।

प्रतिवर्ष हृष से फिर तेरा श्राद्ध मनाऊँ ॥४॥

: १२ :

[नर्ज—कितना बदल गया इन्सान]

जय-जय भिक्षु भिक्षु भगवान ।

युगाधार युगपुरुष तुम्हारा मंगलमय अभिधान ॥ जय०॥

तुमने नव आलोक बिखेरा, बीती रजनी हुआ सवेरा,
पथ बीहड़ था घना अँधेरा, फिर भी गमन रुका नहीं तेरा

किंकर्तव्यमूढ मानव ने पाया सच्चा ज्ञान ॥१॥

शुद्धाचार-विचार-विमलता में जीवन की भरी सफलता,
श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र-प्रबलता से सात्विक रस स्रोत निकलता,

धर्म-कर्म की गति समन्वित हो, यह था आह्वान ॥२॥

जब लग जग की पूर्ण व्यवस्था, मानव-मन की स्वस्थ अवस्था,
जब लग रवि-जशि-गण की संस्था में व्यापक है गति अनवस्था,

जनता को आलोक दिखाये तेरापंथ महान् ॥३॥

१३

[तर्ज—इतिहाम गा रहा है]

भगवन् ! तुम्हारी हम मव यह आरती मजायें ।
 श्रद्धा के फूल दो-दो श्रीचरण मे चढायें ॥
 क्यो शत्रु की उपेक्षा, क्यो मित्र की अपेक्षा ।
 माध्यम्य वृत्ति को हम निज शीश पर चढायें ॥१॥
 अनुगम क्यो किसी से, क्यो द्वेष भी किसी से ।
 ममदशिता मुग्ध यह जीवन मे फैल जाये ॥२॥
 क्यो बाह्य-भावनाएँ हमको कभी बतायें ।
 व्रम, आत्म-भावना के नव दीप हम जलायें ॥३॥
 शुभ देन हो तुम्हारी, थाती सदा हमारी ।
 जिनके सहारे से हम यह मुक्त जग जगायें ॥४॥

: १४ :

[तर्ज—जैसा करना वैसा भरना]

शासन-भक्त प्रभो ! हम तेरे तन-मन अर्पण चरणों में ।
 लो लाखों अभिवन्दन विभुवर, भक्त खड़े हम शरणों में ॥
 गूँज उठा जय-घोष तुम्हारा दिग्-दिगन्त के कर्णों में ।
 लिखी गई हैं यश-गाथाएँ प्रकृति के नव पणों में ॥१॥
 देव ! तुम्हारी सहज साधना व्यक्त करे किन वर्णों में ।
 मिली न अब तक ऐसी सुन्दर पौराणिक उद्धरणों में ॥२॥
 संघ-व्यवस्था नीति-कुशलता रूप रुचिर आभरणों में ।
 पाते हैं प्रतिबिम्ब भिक्षु का जैसे निर्मल भरणों में ॥३॥
 नैतिकता की सुर-सरिता भौतिकता के आवरणों में ।
 लुप्टी जा रही थी, उसका उद्धार किया ले शरणों में ॥४॥
 अनुशासन आचार-कुशलता के सुन्दर अवतरणों में ।
 किया संघ आवेष्टित तुमने शुद्ध साध्य शुभ करणों में ॥५॥
 लीन रहेगे देव ! तुम्हारे सैद्धान्तिक उपकरणों में ।
 विजय वरो तुम मुनि 'महेन्द्र' की विजृप्ति श्रीचरणों में ॥६॥

[नय—गयाते में दिया के दम पर]

प्रभो ! तारा मान में नुहानी नार में देना ।

गीत ही मोक्ष मदि न मुने रुपया रिठा देना ॥

ज्यादा है जो तपसों ही नीग्रह अग्नि टा नन म ।

जान ही उद यगा पर निरुज्जत ! जान ता देना ॥१॥

न्याय के पर में समता जा टा दिव्य बीर है ।

कमल ही नीति है भागो ! गीत ऊँचा उठा देना ॥२॥

जगत है मोहग्र नाता नुहारे माय में जोड़ू ।

ताहिरी भावता मेरी सफ़व प्रभुवर ! गता देना ॥३॥

ता देना ता देना, कही भी ता ना पाता ।

विना ता मे मुहरी पाउ ता ता उठा देना ॥४॥

अ मय्य ता गृनिर्ग लब्ध ही तम् नृप ज्यो ।

दशविधि उद दस मेता जूठा मैय ला देना ॥५॥

: १६ :

[तर्ज—ऋषिराज ! तुम्हारे चरणों में]

साधना में लीन हो उन्मेष पाएँ हम,
जान की लौ जलाएँ हम ।

चेतन की उपलब्धि-हेतु हम पल-पल कदम बढ़ाएँ ।
संकल्पों का ज्वार रोक कर मन को शान्त बनाएँ ॥
ऊँचे इस साधन को सारे आजमाएँ हम ॥१॥

इन्द्रिय-विषय-विकार-भावना मन को बोझिल करती ।
सहज अवस्था को दूषित कर चेतन-सुषमा हरती ॥
उद्यम पूर्वक इस प्रवृत्ति पर रोक लगाएँ हम ॥२॥

क्षण-क्षण का संधान साधना में आवश्यक होता ।
रह कर लीन आत्म-भावों में साधक कल्मष धोता ॥
महावीर की इस वाणी को शीश चढ़ाएँ हम ॥३॥

बीत गया जो समय, नहीं वह तो वापस आएगा ।
भूत नहीं पर वर्तमान ही रंग नया लाएगा ॥
प्रकृति के इस शाश्वत क्रम को क्यों भूलाएँ हम ॥४॥

देखें, सुनें सदा चेतन को, आस्वादन चेतन का ।
सूँघे क्षण-क्षण हम चेतन को, हो स्पर्शन चेतन का ॥
मुनि 'महेन्द्र' इस विधि से ही उस पार जाएँ हम ॥५॥

१७

[तर्ज—प्यासे पड़ी नील गगन में]

अपना रूप निहागे

दर्पण छोड़, मूढ़ रूँ धौंय निज गुण मदा ममाने ॥

पर-चिन्ता में रहा भटकना निज को भूल गया तू ।

पर ही अस्थिर रूपा प्राप्त कर मन में फूट गया तू ।

पाकर बोझ, लगे दूषित ऐतक को धीघ्र उतारो ॥१॥

जिम्ने निज को जान लिया, उमने जग जान लिया है ।

निज को भूल जगत में जाना, उमने दम्भ लिया है ।

छोड़ दम्भ ही इस प्रवृत्ति को महज मगलता पागे ॥२॥

तो सप्रियत्व जान होता है, वह तो मदा अधूरा ।

निर्मिल-मात्र-गुण्य ही, एत जान है पूरा ।

मक-तो वे अवोदय-आगेहण को भी आगे ॥३॥

जहाँ चातुरी दिखाने को मानव उत्पन्न होता ।

वहाँ चेतना की मोजिदना तो वह तो है मोता ।

महज भाव में मण लगे, दृष्टिमता धीघ्र निरागे ॥४॥

यग-गिप्ता की जोर चेतना को तित चून रही है ।

जहृति दुर्भाव हृदय में प्रनिम्न दृग ही है ।

मुनि 'महेन्द्र' जागृत होकर वे गहने निज को तारो ॥५॥

: १८ :

[तर्ज—तुम्हीं मेरे मन्दिर तुम्हीं मेरी पूजा]

मुझे एक आत्मा का सही ज्ञान हो वस,

यही कामना है, यही कामना है ।

नही अन्य भावों की पहचान हो वस,

यही कामना है, यही कामना है ॥

जब तक विभावों के पीछे लगा था,

मैंने स्वयं को प्रतिपल ठगा था ।

नही मेरा मेरे से व्यवधान हो वस,

यही कामना है, यही कामना है ॥१॥

ज्यों-ज्यों विभावों को पढ़ता गया था,

त्यों-त्यों अहं भी बढ़ता गया था ।

अब शीघ्र उसका अवसान हो वस,

यही कामना है, यही कामना है ॥२॥

ज्यों-ज्यों बढ़ाया परिचय जगत का,

दूटा था नाता त्यों-त्यों ही सत का ।

अब चेतना का अवधान हो वस,

यही कामना है, यही कामना है ॥३॥

उत्कर्ष पाकर रहा फूलता मैं,

चित् की महत्ता को रहा भूलता मैं ।

‘महेन्द्र’ शुभ वह सन्धान हो वस,

यही कामना है, यही कामना है ॥४॥

१६ .

[तर्ज—खटो नीम के नीचे]

आत्म-रूप को पाना ही घम मार है ।

इसके बिना जो पाया कुछ भी वह तो सब निम्मार है ॥

कग्ने-कग्ने बीता मारा समय हाथ क्या कुछ आया ?

कग्ना ओडेंगे तब अनुभव होगा, सब कुछ है पाया ।

क्रिया-काण्ड का उठा जटिल प्राकार है ॥१॥

मम्प्रदाय का मोह मन्य को मद्दा दवाता है आया ।

इमीलिये आ जानी न पर अभिनिवेश की है छाया ।

फटा न श्रव तब समता का सहकार है ॥२॥

युग-युग में होनी जाई है नई धर्म की परिभाषा ।

उलझी जिसमें रह जानी है अन्तर्गत की अभिभाषा ।

चेतन बन पाया न जम्ज अविकार है ॥३॥

उपचारों के मुदृष्ट बलय में उड़ चेतना होती है ।

फित्तु इमी में विषय निन्दगी पूरी मक्की होती है ।

‘मुनि महेन्द्र’ मत्र उन्व-हेतु व्यवहार है ॥४॥

: २० :

[तर्ज—नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे]

है यही संकल्प सबका साधना की लौ जले ।
 चेतना का बोध हो, अज्ञान की छाया टले ॥
 ममता के आवर्त्त बीच फंस चक्कर खूबल गाये हैं ।
 इसीलिये समता के कण आत्मा को छू नहीं पाये हैं ।
 मैत्री और प्रमोद भावना के पथ पर सब बड़े चलें ॥१॥
 रहे धर्म से अनुप्राणित ही, जीवन का प्रत्येक पल ।
 छा पाये जिससे न कपायों के काले-काले बादल ।
 और रहे न कभी अन्धेरा, आत्मा के शुभ दीप-तले ॥२॥
 सादा जीवन, शुभ विचार ही जीवन का शृंगार है ।
 सहनशीलता, दूरदर्शिता ही सुदृढ़ आधार है ।
 'मुनि महेन्द्र' सब में जागृति के शुभ सस्कार सदा फलें ॥३॥

२१ :

[तज—मदिर मे काई ढूढती फिरें]

साधो ! हो अपने मे लीन, निहारो असली आत्म-रूप को ।
 साधो ! कर आश्रय को क्षीण, निहारो असली आत्मरूप को ।
 जहाँ अनुबन्ध योग का होता वहाँ तो मुक्ति नहीं है ।
 शुभ-अशुभ दोनों बेड़ी, यह प्रभु ने बात कही है ॥१॥
 भटकत रहन भवाब्धि बीच यो समय असीमित बीता ।
 किया बहुत पर रहा अभी तक आत्मा का घट गीता ॥२॥
 यदि न हुई निवृत्ति, प्रवृत्ति न फलदायक हो सकती ।
 करो निवर्तन बहिर् भाव का, प्रकटे चिन्मय ज्योति ॥३॥
 अपमत्त की किया, जक्रिया की निमित्त बन जाती ।
 अमित शक्ति क्रमश जागृत कर रग अनूठा लाती ॥४॥
 कर्मों का आत्मा पर लेप लगा तुम्ही की नाई ।
 'मुनि महेन्द्र' मुस्थिर बन जाओ, हट जाये परछाई ॥५॥

: २२ :

[तर्ज—मंदिर में काँई ढूँढ़तो फिर]

तन्मय होकर के साधना करो, छोड़ो मन के विषय-विकार ।
 एक^१ जीतने पर पाँचो पर विजय मुनिञ्चित होगी ।
 क्रमशः दश; फिर जीत विश्व को बन जाओ सब योगी ॥१॥
 आत्मा^२ ही पापों की कर्ता, आत्मा ही सहर्ता ।
 आत्मा मित्र-अमित्र उभय है, आत्मा ही है भर्ता ॥२॥
 होकर आत्म-स्थित^३ इन्द्रिय से अपनी रक्षा करना ।
 रक्षित आत्मा सुख का साधन, अरक्षित दुःख-भरना ॥३॥
 मन में कुछ, वाणी में कुछ, यह भेद न रहने पाये ।
 'मुनि महेन्द्र' कथनी-करनी की ग्वाँई सब पट जाये ॥४॥

१. एगे जिये जिया पच, पचे जिये जिया दस ।

दसहा उ जिणित्ताण सव्वे सत्तू जिणामहं ॥

२. अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य मुहाण य ।

अप्पा मित्तममित्त च, दुपाठिय सुपाठिय ॥

३. अप्पा दुख लु सयय रक्खियव्वो, सव्विदियेहि सुसमाहि ए हि ।

अरक्खियो जाइपह उवेइ, मुरक्खियो सव्वदुहाण मुच्चई ॥

: २३

[तर्ज—भाग बहों जा उत्तिघोरे]

क्षण भी प्रमाद मत करना रे, सम्भन कर नचना रे ।
 टग फूंक-फूक कर भगना रे, जग केवल उनना रे ॥

एक पलक का निर्णय नर तो नभ मे है पहुँचाता ।
 एक पलक का निर्णय त्यों ही महागीश्व दिगलाना ॥

यह मत्य तन्व न विमग्ना रे ॥१॥

अतुल शक्ति का श्रोत उमटना पच भूत के तन मे ।
 चित्तन की जलय निधि रक्षित मानव । ते मन मे ।

है ज्ञान-बला का जगना रे ॥२॥

कही न उमा। दुष्पयोग हो, मायमान हो हना ।
 “उद्विजे तो पमायजे” इस रम प्राग मे रहना ।

यदि रन्मय तुल्यो हगना रे ॥३॥

नश्यत तन पर कात भयानक प्रतिफल चोटे करना ।
 एक-एक कर जन्म-गुणो को है प्रमाद कर हना ।

वृद्धिगा करता चलना रे ॥४॥

अप्रमत्त उन निद्रित ह्य, भाण्ड विहग उन रिचो ।
 ‘मुनि महेन्द्र’ अत्र आत्म-निलय मे नन्मय शोक प्राग ।

मिट जाये दुःख-राश्या रे ॥५॥

: २४ :

[तर्ज—निजाम हैदराबाद]

यह स्वार्थ का पुनला मनुज है इमकी क्या बतलायें ।
 लड़ाकर निडकमवाजिया दुनिया को मूर्ख बनाये ॥
 किन्तु वास्तविकता पर परदा कब तक रहने पायेगा ।
 आखिर दूध और पानी का न्याय स्वयं हो जायेगा ॥

इसको न कभी भुलायें ॥१॥

अपने लिए दूसरों का बलिदान पूर्णतः चाहता है ।
 पर-हित में तो योग तनिक-शा करते भी सकुचाना है ।

औरों को बुद्ध बनाये ॥२॥

जिस डाली पर बैठ, मधुर फल खाता; उसको काटता ।
 स्वार्थों के गहराते तम से संस्कारों को पाटता ।

अपना उल्लू सहलाये ॥३॥

अपने महल बनाने हित घर पर के सहज उजाड़ता ।
 छक्के-पंजे लड़ा-लड़ा औरों को शीघ्र पछाड़ता ।

नीचे से ही खिसकाये ॥४॥

अपने लिए चाह है जैसी, वैसा ही व्यवहार हो ।
 समता औ' माध्यस्थ भावना का मंजुल उपहार हो ।

यह सत् शिक्षा अपनायें ॥५॥

२५

[तज — जय घोली महावीर स्वामी की]

मानव-जीवन का मान करो ।

जपने का ही आह्वान करो ।

प्रतिपन्न निरव्यय विधान करो ॥

तो समय बीता जाता है ।

वह पुन लौट कर आता है ।

क्षण-क्षण का शुभ मन्थान करो ॥१॥

जाया-यायी ने दूर चलो ।

निन्दा-चुगली ने दूँ रहो ।

गुण चुन-चुन आत्म-निधान करो ॥२॥

मैं तिम्र-स्त्रिम गति में आया हूँ ।

मुकूत-मुकूत गया गया हूँ ।

उत तत्त तत्त्व ही आया हूँ ॥३॥

उत जीवन का नेगा-तोगा ।

समुत्ति करने का है मोसा ।

अदाम हर स्वयं-निर्गत करो ॥४॥

जाम्बून वृत्ति यत्ता चले ।

प्रहितात्म तद दुःखता चले ।

तो तोत चय प्रभु-पात ता ॥५॥

: २८ :

[तर्ज—उठ जाग मुसाफिर भोर भई]

तीर्थकर नाम कर्म-अर्जन के बीस निमित्त बताये हैं ।

हाँ बीस निमित्त बताये हैं, आगमकारों ने गाये हैं ॥

अरिहन्त^१, मिद्ध^२, प्रवचन-अर्चन^३,

गुरु^४, स्थविर^५, बहुश्रुत^६ का वन्दन,

कर घोर तपस्वी^७ की स्तवना निज को इस पद तक लाये हैं ॥

तत्त्वों का पुनः-पुन चिन्तन,^८ सम्यक्त्व रत्न^९ का शुभ वर्तन,

कर विनय^{१०} धर्म का अनुशीलन, सर्वोत्तम पद नर पाये हैं ॥

पङ् आवश्यक^{११} विधि से करते, नहीं ब्रह्मचर्य^{१२} से है टलते,

वैराग्य^{१३} भावना से भावित होना कारण बतलाये हैं ॥

वाह्याभ्यन्तर तप^{१४} का करना, शुभ पात्रदान^{१५} देते रहना,

गुरु, ग्लान, तपस्वी, शैक्ष^{१६}, स्थविर, साधर्मिक की सेवाये हैं ॥

हो समाधिस्थ^{१७} पल-पल रहते, अभ्यास-ज्ञान^{१८} का हैं करते,

श्रुत^{१९}-भक्ति और प्रवचन^{२०}-महिमा, ये हेतु मुख्य कहलाये हैं ॥

इन बीसों का हो आराधन, या कुछ का भी हो शुभ साधन,

तीर्थकर पद उपयुक्त पुण्य संचित होते ही आये हैं ॥

तीर्थकर पद की अभिलाषा, है केवल वहिर्मुखी आशा,

कर दूर “महेन्द्र” इसे महसा साधक ही सिद्ध कहाये हैं ॥

२६

[तर्ज—म्हारा खेल भवर का बागां मे]

ओ भारतवामी ! मत्स्य अहिमा व्रत सारे अपनाओ ।

भोगवाद मे मग्न हो दुनियां डूब रही,

नाना वाद-विवाद से है वह ऊब रही,

जब त्याग-नपोवल के रास्ते मे अपने पैर बढ़ाओ ॥१॥

भाग-भोग मे ज्ञान्ति के अकुर नही होते,

कीचड से नही स्वच्छता प्यो यह वस्त्र बिगोते,

सत्य नीर से गन्दापन सब धोकर दूर हटाओ ॥२॥

मानवता का मूल यहाँ है नही पनप रहा,

दानवता का भूत भी नगा नाच रहा,

नैतिकता फिर से जीवित हो, ऐसा रुदम उठाओ ॥३॥

: ३० :

[तर्ज—कितना बदल गया इन्सान]

रखना मानवता का ध्यान ।

मतदाता बन नहीं बनाना पैसे को भगवान् ॥

भारत-भू पर प्रजातंत्र का, श्रीगणेश है आत्म-तंत्र का,
लोप हुआ है राजतंत्र का, छाये घन ना स्वार्थ-तंत्र का,

अतः जालसाजी से कभी न करना है मतदान ॥१॥

प्रजातंत्र की रीढ़ नीति है, जन-जन का सम्बन्ध प्रीति है,
हृदय-सरलता सहज वृत्ति है, भारत की प्राचीन रीति है,

अतः भरोसे भूठे देकर मत करना मतदान ॥२॥

भारत के वच्चे-बूढ़े सब, नीति निपुण होंगे अविकल जब,
स्वर्ग धरा पर उतरेगा तब, सुख पायेंगे नर-नारी सब,

‘मुनि महेन्द्र’ इस पुण्य धरा का विश्व करेगा मान ॥३॥

: ३१ :

[तज—साथीडा रामू रे]

मत्र लोडो माया रे, यह मंत्री विगोने वाली ।
 निज आत्म-गुणो से है यह बैर बढ़ाने वाली ॥
 माया मे पढकर के कहो किमने मत्त्व न गोत्रा ।
 मौजन्य-भाव हिन है, यह एक हलाहन प्याली ॥१॥
 ज्यो क्षय के कीटाणु, तन को जर्जर है करते ।
 त्यो माया डाकिन रे, है प्रेम गमाने वाली ॥२॥
 हाँ, एक बार तो रे, कुछ मुग की मामे लेना ।
 पर आविर मे तो यह है दुग ही देने वाली ॥३॥

: ३२ :

[म्हारा छेल भंवर का बागाँ में]

ए मानव ! उठ तू शील सुधारस पीले तन्मय होकर ।
 विश्व थपेड़े खा रहा, इत-उत हो उद्भ्रान्त,
 निजाचार को छोड़कर, वनता है उत्कलान्त,
 वह बढ़ना चाहता है अपनी सारी पूंजी को खोकर ॥१॥
 ब्रह्मचारी जो पूर्ण है या पत्नीव्रत धार,
 रहते निर्मल चित्त से अपने मन को मार,
 उनके सन्मुख देव-इन्द्र भी रहते जैसे नौकर ॥२॥
 चन्दनवाला, द्रौपदी, सीता सती पवित्र,
 सेठ सुदर्शन की बनी घटना अती विचित्र,
 श्रोत्र-परम्पर उनका यश अब बहता सम्मुख होकर ॥३॥
 यह शारीरिक-क्रान्ति का, बल का है भण्डार,
 मानवता का मूल है आत्मिक गुण-आगार,
 विकसित होती सदा चेतना एक इसी में होकर ॥४॥
 दुष्कर दुष्कर है सदा महादुष्कर यह कार्य,
 इसकी उत्कट साधना कर सकता है आर्य,
 मुनि 'महेन्द्र' हो जा पवित्र तू सारे कल्मष धोकर ॥५॥

: ३३ .

तू जाग रे ! सुजानी यह काल आ रहा है ।
 अपनी, यह हरकतो से जग को निगल रहा है ॥
 घुसे लुटेरे तेरे घर मे बहुत बडे हैं ।
 तू देग-देख जल्दी धन तेरा जा रहा है ॥१॥
 तू जानता है जग मे बढता मैं जा रहा हूँ ।
 पर ह्लास तेरा दिन-दिन यह काल कर रहा है ॥२॥
 बडे-बडे थे राजा योगी विरागी माधु ।
 मर हैं चले गये तू क्यों मस्त बन रहा है ॥३॥
 परलोक जब चलेगा, वहाँ पुण्य क्या रखेगा ।
 यहाँ पर न कुछ कमा कर तू खर्च कर रहा है ॥४॥
 अनमोल पल जो जाते, वे लौट कर न आते ।
 तन्मय 'महेन्द्र' प्रभु की शिक्षा मुना रहा है ॥५॥

: ३४ :

[तर्ज—हरि गुण गाय लै रे]

पर्व शुभ, आया है, संवत्सर का आज ।
 धर्म-रंग छाया है, पुलकित सकल समाज ।
 पर्व कहाते अन्य तो यह पर्वों का अधिराज ॥
 वृद्धों वृद्धों के जगा है मन में नव उत्साह ।
 युवकों की बाँछें खिलीं, हुआ धार्मिक दृढ विश्वास ॥१॥
 चूल्हे चाकी की हुई है घर-घर में हड़ताल ।
 खिले ठिकाने धर्म की है जागरणा सुविशाल ॥२॥
 भदियों कदियों की हुई सदियों से आगे दौड़ ।
 पौरुष का हैं दे रहे सब परिचय तो वेजोड़ ॥३॥
 आत्मा लोकन के लिये हो पल-पल का उपयोग ।
 छूट जायेगे सहज ही में सब संयोग-वियोग ॥४॥
 पर्वाधन के लिये हो आत्मा ही शुभ केन्द्र ।
 शल्य-रहित हो सर्वथा ही निखरे 'मुनि महेन्द्र' ॥५॥

३५ .

[तर्ज—भोल्लण जी स्वाकी नारी मर्यादा]

पर्यूपण आया ज्योति जगाओ 'धर्म-ध्यान की ।
 अन्तर के अज्ञान का जिससे हो जाये अवमान रे ॥
 आत्मा से देखो नतत अविकारी आत्म-स्वरूप रे ।
 छोड़ कपाय-प्रमाद को वन जाना है चिद्रूप रे ॥
 व्यास, जाप, स्वाध्याय से होकर तन्मय हर वार रे ।
 भावो वारह भावना जिमसे वहे उपगम रस-धार रे ॥२॥
 रात्रो भोजन छोड़कर, करों सचित द्रव्य-परिहार रे ।
 चौपट ताम खेलो नही, मत देखो सिनेमा द्वार रे ॥३॥
 ब्रह्मचर्य की साधना, कगे होकर के अविकार रे ।
 पालो अणुग्रन प्रेम से शुद्ध जीवन का उपहार रे ॥४॥
 पर्व कहलाते अन्य तो यह पर्वो का अधिराज रे ।
 'मुनि महेन्द्र' थी भिक्षु के शामन पर युग की नाज रे ॥५॥

सत्य साधना दिवस के उपलक्ष में

: ३६ :

[तर्ज—दिल लूटने वाले जाहूगर]

है सत्य रीढ़ जीवन की इसको इधर-उधर मत होने दो ।
 शुभ चिन्तन का पोषण दे इसमें संस्कारों को बाने दो ॥
 सत्य लोक में सारभूत^१ है; महावीर की यह वाणी ।
 सत्य स्वयं परमात्म^२ रूप बन करता सबकी अगवानी ।
 पहचानो आत्मा^३ से इसको; इसमें प्रतिभा^४ को बहने दो ॥१॥
 है आवश्यक क्रोध,^५ लोभ, भय, हास्य-वृत्तियों का वर्जन ।
 सत् स्वाध्याय अपेक्षित इसमें जिससे होता शुभ वर्जन ।
 कटु-कर्कश^६, हिंसक सत्य वचन से वर्जित जीवन रहने दो ॥२॥

१. सच्चं लोगम्मि सारभूय

२. सच्चं खु भयवं

३. अप्पणा सच्चमेसिज्जा

४. मच्चंमि विडं कुव्वहा

५. मे कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा

६. तहेव फरसा भासा गुरु भूओवघायिणी ।

सच्चा वि सा न वत्तव्वा जओ पावस्स आगमो ॥

आत्मार्यो' दृष्ट जीर परिमित मन्देह रहित भाषा बोले ।
 पङ्क्तिपूर्ण स्पष्ट औ' अनुभूत होने पर ही मुँह को गोले ।
 उद्वेग और वाचालवृत्ति का दाप न उम पर लगने दो ॥३॥
 मत्त-माधना वी अन्तिम उपलब्धि स्वय का दर्शन है ।
 वीतराग हो, कर्मरहित हो पचम गति का स्पर्शन है ।
 है अनृत तो कर्मप, उमरा मत भार स्वय को टोने दो ॥४॥

७ दिट् मित्र अमदिद्ध पङ्क्तिपुण्य विन जिम ।
 अय पिर मगुविग्ग भास नितिर अत्तव ॥

संयम साधना दिवस के उपलक्ष में

: ३७ :

[तर्ज—कोटि-कोटि कण्ठों से गाएँ]

संयम है जीवन की उन्नति का सीधा सोपान रे ।
 जिसके माध्यम से करता नर गान्त-मुधा का पान रे ॥
 है विस्तार वृत्तियों का घातक आगम बतलाता ।
 उनका ही संकोच साधना में है अलख जगाता ।
 है इसका जापक जाता का दो कच्छप का आख्यान रे ॥१॥
 भोजन तो केवल काया के संरक्षण का साधन ।
 पर भोजन के हित जीना तो सब से बड़ा विराधन ।
 पाकर के विजय स्वाद पर; करना संयम का सन्धान रे ॥२॥
 मानव अधिक बोलकर बहुधा अपनी शक्ति विगोता ।
 और मौन से, खर्च हुए संबल को पुनः संजोता ।
 जीवन में आवश्यक है वचन गुप्ति का शुभ संस्थान रे ॥३॥
 काया का संवर साधक का है व्यक्तित्व बढ़ाता ।
 और समुज्ज्वल करता आत्मा; उन्नत श्रेणि चढ़ाता ।
 मन-इन्द्रिय का कर दमन 'महेन्द्र' बनाओ स्वर्ण-विहान रे ॥४॥

लाघव साधना दिवस के उपलक्ष में

३८

[तर्ज—प्रभो ! तुम्हारे पावन पय पर]

अनामकित की युभ्र मायना जीवन गुद्व बनाती है ।
 कोटि-कोटि भय मे सचित अपदल को दूर हटानी है ॥
 बाह्य जगत के आरपण मे मानव सहज लुभाता है ।
 ममता का मश्लेष लगा फिर वन्धन निविड बनाता है ।
 रुक जाती चिन्मय की धारा, जो नि श्रेयस पहुँचानी है ॥१॥
 हरिण, शलभ जीरभ्रमर, मीन, मातंग त्याग कर लाघव को ।
 प्राण-त्याग कर अज गमाते अपने वे स्वर्णिम लव को ।
 अनामकन, निर्मोह भावना उन्नति शिखर चढ़ानी है ॥२॥
 नमि राजर्षि, भरत चक्री, भद्रा-मुन, चक्री मनत्कुमार ।
 अनामकत हो, मोह-मुक्त हो, पहुँचे मोक्ष-नगर के द्वार ।
 उतरी ही अनुमति 'महेन्द्र' जो उपशम धार बहानी है ॥३॥

श्राजव साधना दिवस के उपलक्ष में

: ३६ :

[तर्ज—इतिहास गा रहा है]

मन को सरल बनाकर, अब तोड़ो दुःख-घेरा ।
 होगा वहाँ सहज में, अध्यात्म का वसेरा ॥
 जो दूसरो के हित नर है खोदता कुंए को ।
 गिरता स्वयं उसी में छाया जहां अंधेरा ॥१॥
 अध्यात्म-साधना का पलिमन्थु छद्मवृत्ति ।
 घटना श्री मल्लिप्रभु की देती हमें उजेरा ॥२॥
 व्यवहार दूसरों का चाहता सदा सुधा-सा ।
 तो क्यों न उसके दिल में अपना हृदय उँडेला ॥३॥
 ऋजुता 'महेन्द्र' अपनी थाती रही सुनहरी ।
 फिर चित्र छद्म का है किसने अरे ! उकेरा ॥४॥

मार्दव माधना द्विजस्य क उपलब्ध मे

४०

[नर्च—सभापति श्राप मिले]

विनय है जिन-शामन का मूल ।
 अविनय को प्रश्रय देना है सयम के प्रतिकूल ॥
 अपने को अति उच्च मानना,
 और अपर को हीन समझना,
 यह तो मोटी भूल ॥१॥

अभिमानी को ज्ञान न होता,
 वह नो केवल बोझा टोना,
 करता तप की धून ॥ २॥

जह नाव का पूर्ण विगर्जन,
 कर्ता आत्मोदय या मर्जन,
 गिनते मम के फूल ॥३॥

बाहुगली या तीव्र नपोग्न,
 नोड गया क्या मन्त्रि अग्रदन ?
 ओह कपाय-दुरू ॥४॥

पीथल वड़ा, हीरजी स्वामी, शिवजी, दीप तपस्वी रो ।
कोदर और अनोपचन्दजी, मुख मुनि घोर तपस्वी रो ।

जप कर दृढ़ मन नाम, तपस्या धारल्यो ॥४॥

पंखी^३ अपनी पांख्यां स्यूं झड़कादै मागी धूल नै ।
आत्मारथी कर तीव्र तपस्या खो दै अघ रै मूल नै ।

‘मुनि महेन्द्र’ जीवन नै तप में ढालल्यो ॥ ५॥

३. सउणी जह पंसुगुंडिया विहुणिय धंसयई सियं रयं।

ऐवंदविओवहाणवं कम्म खवड तवस्सिमाह णे ॥

—सूत्र० श्रुत० १, अ० २, उ० १, गा० १५

: ४३ .

[तर्ज—दिल लूटने वाला जादूगर]

कर आत्म-शक्ति नै केन्द्रित मामूहिक तप मव आरम्भ करो ।
 भव-भव रै मचित अघदल^१ नै काटण रो अेक उपाय खरो ॥
 उग्र तपस्या मे बहुधा ओ तन गेडा अटकावै है ।
 अपणो रोव गाठ कर सहमा एक बार घमकावै है ।
 पर छाती कर मजबूत डटो, ल्यो लोहो रण मे विजय वरो ॥१॥
 भूय भूआजी बिना बुलाया थारै केडै लागैला ।
 सूता भूवा भूत जगणै मे नही कसर उठावैला ॥
 बारी परछाया स्यू रह दूरा शरणो ल्यो उत्कट तपरो ॥ २॥
 दृढपगहारी, चोर चिलाती, परदेगी, अर्जुनमाली ।
 घोर तपस्या रै माध्यम स्यू कलुपित आत्मा उजवाली ।
 वा तपस्या रै ऊचा आदर्श नै सगला चरितार्थ करो ॥ ३॥
 बडी बडी लट्ठ्या नै पाया मुनिवर तपस्या रै ही पाण ।
 बाहुबली, वाली रै बल रो करै कौण सहमा अनुमान ।
 पूर्य भव मे जो करी तपस्या प्रतिफल 'मुनि महेन्द्र' स्मरो ॥४॥

१ भव गोडो मचित कम्म तवमा निज्जरिज्जटं ।

—उत्तरा०, अ० ३०, गा० ६

: ४४ :

[तर्ज—रोको काया री चंचलता नै]

आदिम वावै रो परिवार सारो मंगलकारी ।

प्रतिपल जाप जप्यां स्यूं लाभ हुवै भारी ॥

सामायक, उपवास, पोषध आदि क्रिया ।

माता विना कियां ही सध स्यूं पहली नाव तारी ॥ १ ॥

राजनीति और धर्मनीति रा सर्जन हारा ।

वणग्या लाखां लोग आदीश्वर प्रभु रा अनुचारी ॥ २ ॥

अनित्य भावना भाई चक्री भरत घणी ।

स्नान-घर में केवल पायो अघदल जारी ॥ ३ ॥

अपणी टेक निभाई भाई बाहुवली ।

बाहर महीना में ही केवल पायो मोह-छारी ॥ ४ ॥

इष्टाणु भायां रो तो इतिहास है वडो ।

अष्टापद पर सिद्ध वणग्या राग-द्वेष टारी ॥ ५ ॥

भगिनी ब्राह्मी-सुन्दरी रै गील री कथा ।

छिन-छिन याद करै है लाखां नर-नारी ॥ ६ ॥

ऋषभसेन हा ऋषभदेव रा गणधर मोटा ।

पहलो दानी वण श्रेयान्स सारी त्रास टारी ॥ ७ ॥

तापस मरीचि त्रिदण्डी महावीर-जीव हो ।

वणग्या सूर्ययगादिक आठ भावी केवलधारी ॥ ८ ॥

विघ्न-विनाशक, मंगलकारक नाम जपो ।

पावो 'प्रथम' प्रथम पद अनुपम सारा लाभकारी ॥ ९ ॥

४५

[तजें—बन्नावो गावो पूज्य पधार्या]

भीखणजी स्वामी मगलकारी वारो नाम है ।
 लावा नर-नार्या तणा हुवँ मन वच्छिन मय काम है ॥
 वल्लुगाह ग लाउला, माना दीपा ग अग-जात ।
 मकलेचा परिवार में अवतरिया ले शुभ आथ ॥१॥
 मतहर सौ तैयामिये मुद तेरस मास आपाट ।
 कटानियपुर में हूयो घर-घर मे हर्ष प्रगाढ ॥२॥
 मिह सलूणो देवियो मपनै मे दीपा मात ।
 गज्या मिह जिसा सदा, पाई जग मे अनुपम ग्यात ॥३॥
 अठारह आठै लही द्रव्य दीक्षा तज पग्वार ।
 अठारह मनरै कर्यो, प्रभु तेरापय-प्रचार ॥४॥
 अठारह माठै कियो भाद्रव मे स्वर्ग-विहार ।
 “मुनि महेन्द्र” है वन्दना चरणा मे गत-गत वार ॥५॥

: ४६ :

[तर्ज—माढ़]

भारीमाल भगवान् ! थानै पल-पल ध्याऊं मैं ।
 पल-पल ध्याऊं, बलि-बलि जाऊं, पाऊं परमानन्द ॥थानै०
 भिक्षु प्रभु री दूजी देही, गौतम ज्यू महावीर ।
 अन्धेरी ओरी री घटना करै रोमांच गरीर ॥१॥
 मोह तात रो छोड़्यो खिण में शिगु वय में गुरुराज !
 बाल जगत रो मस्तक ऊंचो तिण स्यूं वेअन्दाज ॥२॥
 अठारह चौकै अवतरिया, तेरह में गृह-त्याग ।
 बत्तीसैं में युवपद पायो, जाग्या जग रा भाग ॥३॥
 साठै तेरापंथ संघ नै कियो सनाथ कृपाल !
 आभारी जुग-जुग म्हे रहस्यां, जपस्यां थारी माल ॥४॥
 अठन्तर रो माघ महीनो विद आठम री रात ।
 स्वर्ग सिधाया; रहियो लारै प्रभु रो यश-संघात ॥५॥

४७

[तर्ज—वधज्यो रे चेजारा थारी बोल]

पल-पल ध्याऊ गायचन्द गणिराज,

मुख पाऊ अविचल सामता, हो गुरुराज ।

चग्णा में तन-मन अर्पण कर आज,

राखूं मुदढ शुभ आसता, हो गुरुराज ॥

अठारह सौ मंतालीमें माल, अवतरिया रावलिया बडी ।

शाह चतरोजी कुलजाजी रै मेह, लागी खुगहाली री झडी ॥१॥

अठारह सौ मत्तावन री माल, झट त्याग दियो ममार नै ।

हलुक्की प्रतिबुद्ध हुया रै वाद, गखै कयूं कर इ भार नै ॥२॥

भिधु प्रभु रो हाथ धरा निज शीश, ब्रह्मचारी री म्याती लही ।

महज मरगता, प्रतिभा री बेजोड, वाता तो ना जावै कही ॥३॥

अठन्तर री मा विद नवमी देव । तेगपथ रा नायक हुया ।

जाग्या लाखा लोगा ग तकदीर, शिवपथ ग ये दायक हुया ॥४॥

उन्नीसौ आठै रो महीनो माघ विद चवदश पहनी रात मे ।

न्यगं पधार्या, नार्या आतमकाम, अव पावा केवल म्यात मे ॥५॥

: ४८ :

[तर्ज—म्हारी हथैल्यां रै बीच]

म्हारी भगती की भेंट सीकारो, जयाचार्य जी !

मैं भक्त थारै चरणां रो ।

म्हारी वीनती मैं भट अवधारो, जयाचार्य जी !

मैं भक्त थारै चरणां रो ॥

हे...म्हारै रू-रू में थे वमिया, मनडो थामें लाग्यो ।

हे...लौ लागी थारां स्यू म्हांरी, भ्रम-तम सारो भाग्यो ॥१॥

हे...साठै अवतरिया रोयट में मरुधर देश उजाल्यो ।

हे...कल्लू-आईदान शाह स्यू सीर सलूणो घाल्यो ॥२॥

हे...गुणन्तरै घर-वार छोड़ कर जयपुर संयम धार्यो ।

हे...तिराणवै युवपद; आठै में गण रो भार सम्भाल्यो ॥३॥

हे...तीस वर्ष लग संघ-व्यवस्था करी सुचारु सारी ।

हे...भिक्षु प्रभु ज्यू थारो ही है, गण-समुदय आभारी ॥४॥

हे...भव्य संगठन मर्यादा स्यू गण नै सदा सजायो ।

हे...पुलकित मन श्रद्धा-सुमनां रो, भेंटणो 'महेन्द्र' चढ़ायो ॥५॥

४६

[तर्ज—होती]

शरणो मधवा रो, हाँ हाँ शरणो मधवा रो हे भगलकारी रे ।
 शरणो मधवा रो, हाँ हाँ शरणो मधवा रो है अतिमुग्यकारी रे ॥
 मधवा ज्यू अवतरिया, बीदामर मे वन्नाजी रै मेह ।
 सत्ताणव मुद चेत डग्यारम वरम्यो दूधा मेह ॥१॥
 आठै जयाचार्य-चरणा मे सूप्यो अपणो जीवन-भार ।
 बीमै युवाचार्य, अडतीमै गण-गोकुल-शृगार ॥२॥
 मिरै पच गी पदवी पाई, छोटी वय मे भी गुरुराज ।
 अनामकत ऋजुभाव क्षमा पर, सब नै होवै नाज ॥३॥
 उदाहरण हा निर्विकार, निर्मोह भावना ग साचा ।
 'सौभागी है मधजी' निकली जयाचार्य-वाचा ॥४॥
 गुणचासै री चेत कृष्ण पाचम नै कीन्हो स्वर्ग-प्रयाण ।
 'मुनि महेन्द्र' पल-पल व्यावा गुरुवर गो गुम अभिमान ॥५॥

: ५० :

[तर्ज—हरि गुण गाय लै रे]

माणक प्रभुवर रो, नाम बड़ो जयकारी ।
 पण्ठम गुरुवर रो, जाप सदा सुखकारी ।
 तन-मन कर स्थिर भाव स्यू सब ध्यान धरो नर-नारी ॥
 संवत् वारह भादवा री कृष्ण चोथ सुखकार ।
 हुकमचन्द-छोटां तणै घर लियो सुखद अवतार ॥१॥
 लघु वय में सहसा टिकी श्री जयाचार्य की दृष्टि ।
 अट्ठावीसैं में हुई झट संयम री शुभ सृष्टि ॥२॥
 जय-मधवा री सेव में तल्लीन रह्या नत शीश ।
 गुण-पच्चासैं में वण्या प्रभु गण-गोकुल रा ईश ॥३॥
 कोमलता कमनीयता रा उदाहरण हा एक ।
 संध-सारणा-वारणा थे करी विना आरेक ॥४॥
 चौपन कार्तिक मास में बिद दूज पधार्या स्वर्ग ।
 'मुनि-महेन्द्र', शुभ भावना स्यू प्राप्त हुवै अपवर्ग ॥५॥

५१

[तर्ज—सपनों]

डालिम गुरु दिल में बसिया जी ।

दिल में बसिया में कर प्राणा रो उपहार ॥

डालिम ही जीवन-जड़ी, डालिम ही आधार ।

डालिम म्हारी चेतना, जीवन रा शृंगार ॥१॥

नौ कै रै आपाठ में, उज्जयिनी अवतार ।

मोत्या चोक पुगविया, पीपाटा-परिवार ॥२॥

तेवीसै रै भादवै हीरा मुनि रै हाथ ।

सयम कमला म्वीकरी, प्रसूयो यश अवदात ॥३॥

कच्छी पूज्य कहाविया, विचरत आगेवाण ।

करी मध-प्रभावना, भोक्या अपना प्राण ॥४॥

चोपन पाट विगजिया निर्वाचन गण-हाथ ।

छयामठें में स्वर्ग नै करचो 'महेन्द्र' मनाय ॥५॥

: ५२ :

[तर्ज—रोको काया री चंचलता नै]

कालू कालजै री कोर, म्हारो हार हीया रो ।
 नासण वाग रो रुखालो, है आधार जीया रो ॥
 छापर में अवतार लियो साल तेतीसै ।
 फैल्यो घर-घर में परकाग छोगा मात-दीया रो ॥१॥
 चम्मालीसै दीक्षा लीन्ही माता-भगिनी-साथ ।
 पायो मघवा गणीराज रो वरदान पियारो ॥२॥
 कोमल दिल मघवा-माणिक री महर पाई ।
 मान दृढ़ अनुशास्ता डालिम भी बढ़ायो ईयांरो ॥३॥
 ओलम्भो जीवन में पायो कदेई नहीं ।
 संवत् छयासठै सनूरो वणग्यो मालिक मुनियां रो ॥४॥
 सदा 'महेन्द्र' बढ़ाई शासन-सम्पदा घणी ।
 संवत् तैणवै सिधायो स्वर्ग साहिव सुधियां रो ॥५॥

• ५३

[तर्ज—मृगत]

पल-पल गुरु नुलमी व्यावो पावो माग परमानन्द ।

इकोत्तर गी कानिक शुक्ता दूज हो,

चन्देरी अवनगिया सघ-शिरोमणि ।

वैयामी मे छोटी घर-परिवात हो,

कालू-चरणा मे मानी मोजा घणी ॥१॥

वर्ष इग्याग्रह रहकर गुरुकुल-वास हो,

रुगियो ज्ञानाभ्यास विशेष प्रकार जी ।

तैराणन मे जाग्या मघ रा भाग हो,

वणिया च्याग नीरव ग प्रभु आधार जी ॥२॥

नैतिकता रो देख्यो घर-घर ह्माग हो,

अणुघन रो दिग्गजायो नूतन माग जी ।

फैन्धो मारै तम तणो उद्योत हो,

हुयो आव्यातिमज्जता म्य अनुराग जी ॥३॥

भगती ग नत्र पूना रो उपहाग हो,

चरणा मे 'महेन्द्र' चढावै आज जी ।

भगता रै आधीन हुवै भगवान रो,

भगता नै भगवान पै होवै नाज जी ॥४॥

: ५४ :

[तर्ज—होली खेलो रे]

घोरी शासण रा, हां हाँ घोरी शासण रा हा मंत्री मुनिवर रे ।

ज्यां री अद्भुत सूझ-बूझ रो कायल शासण सारो रे ।

वत्सलता कर याद हुवै नत मस्तक म्हांरो रे ॥१॥

संघ-सारणा और वारणा में अगुआ नित रहिया रे ।

आचार्या री भुजा कहा जश जग में लहिया रे ॥२॥

कोष्ठ-बुद्धि गंभीर हृदय वण बातां सगली सुणता रे ।

परख योग्यता ही तो बात हृदय री कहता रे ॥३॥

श्री तुलसी रो ध्यान-प्रशिक्षण जन-जन रै मन भायो रे ।

मुनि नगराज ध्यान रो अभिनव दृश्य दिखायो रे ॥४॥

मंत्री मुनि रो स्मारक सुन्दर शरत् पूर्णिमा आई रे ।

“मुनि महेन्द्र” स्वाध्याय-ध्यान री ज्योति जगाई रे ॥५॥

५५ :

[तज—रोको काया की चञ्चलता नं]

पायो स्वामी ने दामण, आपा भाग्यशाली रे ।
 इण लहरतै गण-उद्यान रा तुलसी है माली रे ॥
 बडा-बडा जाचारज अपणी सूझ-बूझ म्यू ।
 इणरी दिन दूणी जीर गन चाँगणी करी ग्यानी रे ॥१॥
 मघ है आपा ने, आपा नेवक मघ रा ।
 आवै कोई भी भूचाल नो ना चने स्वामी रे ॥२॥
 दामण-रग मजीठ है आपा रे नाग्योडो ।
 दिन-दिन बढती हो मगना रे मन में रहो गुनानी रे ॥३॥
 मघ ने मीमा में निर्भय जानना रहो ।
 उजनी आनमा बणावो पार-पार निकाली रे ॥४॥
 मघ ने यश-कीर्ति फेने च्याम कूट में ।
 भावो जा हो शुभभावना मुनिव- (श्रावक) मतिशाली रे ॥५॥
 तघ ने नर-मन म्यू नेरा नाना दृषा ।
 पाया तीर्थार-पद भा नो महज्या आत्म उजायी रे ॥६॥
 तघ ने जी-ज्यात मात रमना रहो ।
 महारी-युग नी आही हो 'महेन्द्र' प्रणाली रे ॥७॥

: ५६ :

[तर्ज—हिवड़ै स्यूं दूर मत जाय]

पा तेरापंथ महान, आपां सौभागी ।

हो...धार्मिक जग में बढ़ रही दिन दूणी अविचल शान ।

नन्दनवन है मिल्यो,

सुरतरु साचो फल्यो,

अपणै हाथ चिन्तामणि आयो ।

आपां फलाँ फूलां

मुख रै झूलै भूलां

सागी मानसरोवर पायो ।

हो...तन-मन सब अरपण करां, करां जीवन नै कुवाण ॥१॥

शासण जीवन-जड़ी,

पाया धन्य घड़ी,

गौरव स्यू सीनो फूलै ।

सागी चौथी आरो,

लाग्यो देखो प्यारो,

शीश आभै नै जाकर छूलै ।

हो...शासण सारो खिल रह्यो है मर्यादा रै पाण ॥२॥

भिधु वीर जीसा,
 दोनी एक दिशा,
 मात्रा री माला गूथी ।

आलमाई पटी,
 कुहगार्द जनी—
 बी री नकिन अनूठी कृती ।

हो० निःप्राणा मे माधना रा फूकया प्रभुवर प्राण ॥३॥

वाह ! वाह ! भिधु कृती,
 करा आपा म्मृती,
 वै तो भागे मतीरा रो वान्ध्यो ।
 स्हागे तप रो छूट्यो,
 मयम रो दूट्यो—
 घागो, बी नै वै तो माध्यो ।

हो ज्योति जगार्द घमं रो तो भाग्यो भ्रम अज्ञान ॥४॥

मघ शतदण्ड मिन्यो,
 पुण्य मोकी मिन्यो,
 रे नरवर आपा न्हावा ।
 छप छाया ग्हो,
 भिधु री अहो,

आषा जान्मानन्द मनारा ।

हो "मुनि महेंद्र" भगती न्यु गीचरा आरै भगवान ॥५॥

: ५७ :

[तर्ज—संघ के सितारे श्री श्री]

साधक सारा देखो आत्मा स्यूं आत्मा,
सार ओ ही है आगम-रो अनूठो ।

निज गुण देखो, छोड़ो पर-गुण-देखणा,
पर-गुण देख्यां वोलो कांई मिलसी ?

भोजन सरस पड़्यो दूसरै री थाली में,
भूख आपां री केवल देख्यां किया मिटसी ? ॥१॥

अवगुण पर मत देवो नजर कदेई,
अवगुण तो है आत्मा रो ढंकणो ।

बीज नियोजित कर निज शक्ति बढैला,
ढंकणो फटैला, कांई पड़ैला न करणो ॥२॥

पर स्यूं घृणां है करणी बहुत बुरी जो,
निज स्यूं घृणां भी कियां हुवै आछी ।

तोलणै रा वाट न्यारा अपना-पराया,
हुयां स्यूं वणैला कियां निज बात साची ॥३॥

आता स्वयं हा आता, ध्यान भी स्वयं हा,
 ध्येय न जुड़ो आता म्यू जायें ।
 नीना रो हूं पत्ता रो भाव दृष्टा म्यू,
 आत्मा परम पद क्षण में ही पायें ॥८॥
 ज्ञान और दान रं जो पजुवा अणना में,
 दिन-दिन आत्मा गण गं ।
 हय निहारें असनी माधव 'महेन्द्र' रो,
 कर्म गयावर माग रिमोह विचारें ॥९॥

: ५८ :

[तर्ज—धन्य गजसुकुमाल मुनि ध्यान धरै]

धन्य वोही नर साधना जो सफल करै ।

पल-पल सावधान हो, अप्रमत्त विचरै ।

धन्य वोही नर साधना जो सफल करै ।

सफल करै; नहीं विफल करै ॥

शीत-उष्ण, दश-मंग, भूख-प्यास रा ।

रोजीनै रा कष्ट अँ तो साधु-वास रा ।

पण आत्म-गवेपी तो न तनिक डरै ॥१॥

अन्त-प्रान्त, रुध-गुष्क आहार भी हुवै ।

अणधार्या ही रोग रा प्रहार भी हुवै ।

तो भी साधक स्व लक्ष्य स्यूं न थोड़ो भी टरै ॥२॥

परिपां रा आघात प्रतिदिन होता ही रहै ।

कदेयन मार्ग छोड़ साधक बहै ।

अतएव सहजता में आत्म-रूप निखरै ॥३॥

आड-दोड भावां में यदि कोई रै हुवै ।

सेलग ऋषि रो जीवन ध्यान स्यूं जुवै ।

मेटी मन री कायरता नै, ऊँचा भाव भरै ॥४॥

स्यालियां री हूक सुण के सिंह है डरै ?

अपणै में अलमस्त वो तो सुखे विचरै ।

इस्या साधक 'महेन्द्र' जग नै तारै रु तरै ॥५॥

५६

[तर्ज—मोरिया आछो बोल्पो रे ढलती]

- मानवी । मत चूकी रे तू अपनी चाल नै ।
थारै चूक्या स्यू होमी हाल-बेहाल ॥
- मानवी । ऊचो चढणो है प्हाडा ऊपरै ।
मकडी पगडण्टी रो कर ग्याल ॥१॥
- मानवी । काली राता है बहुत टरावणी ।
ऊण्डा-ऊण्टा खाला रो है जाल ॥२॥
- मानवी । ऊवड-खावड पथरीली राह है ।
तीखी शूला ऊभी मुह फाड ॥३॥
- मानवी । जमी भाङ्या रो तो नही पार है ।
रह-रह बोले है सिंह-सियाल ॥४॥
- मानवी । साथी तो थारो है नही ।
तो भी हिम्मत राखजे सभाल ॥५॥
- मानवी । मजिल तो दूर, गती भी मन्द है ।
साहम स्यू ही पहुचै लो वी पार ॥६॥
- मानवी । माचो सहायक थारो धर्म है ।
"मुनि महेन्द्र" इण मे रम होजे नू रे निहाउ ॥७॥

: ६० :

[तर्ज—म्हारी हथेल्यां रै वोच छाला पड़ग्या]

साची साधना रो दीप जगाकर, भोला मनड़ा,
हां रूप असली तूं जो लै ।

अंची लीनता रो परिचय देकर, भोला मनड़ा,
हाँ पाप सारा तूं धोलै ॥

हे...मधुर-मधुर संगीत सुणननै तीजै गाम सिधावै ।
हे...आतमा री ऊंडी वात सुणननै कितोयक समय लगावै ॥१॥
हे...सुन्दर-सुन्दर रूप निरखवा ऊठसवारै धावै ॥
हे...आतमा रो असली रूप जोवण नै कांई करतूत दिखावै ॥२॥
हे...मतवालो भंवरो तूं वणकर दर-दर भटकण ज्यावै ।
हे...आतमा री गन्ध लेवण रै मोकै आलसी घणोई वणज्यावै ॥३॥
हे...खाटा-मीठा स्वाद चाखणनै प्रतिपल तूं ललचावै ।
हे...आतमा रो स्वाद लेण रै अवसर, तनै ऊंघ आज्यावै ॥४॥
हे...गमता-गमता स्पर्श करण नै क्षण-क्षण तूं अकुलावै ।
हे...आतमा रो स्पर्श करचो न जरा भी लक्ष्य क्रियां तू पावै ॥५॥
हे...विन पांख्यां आंख्यां ही सारै फिर-फिर समय वितावै ।
हे...क्षणभर आतमा रै निकट बैठतां तनै अमूजणी आवै ॥६॥
हे...इन्द्रयां नै तूं करजे समाहित आत्म-रूप तूं पाई ।
हे...साधना में सफल “महेन्द्र” बणीजे कसर न राखजे राई ॥७॥

६१ *

[तर्ज—म्हारी हथेल्या रे बीच छाता पडग्या]

कुण्ड कारण स्पष्ट वतावो, म्याणा राजाजी ।

नाक कया ढाको थे ?

थारी चेनना गी मगती दिग्गवो, म्याणा राजाजी ।

नाक कया ढाको थे ?

हे • उछल-उछल दुर्गन्धी आवै बैठ्यो ही नही ज्यावै ।

हे मन मोहक इण राज-भवन मे म्हारो जी घवरारै ॥१॥

म्याणी कु वरी । नाक इया ढाका म्हे ।

म्हे कारण स्पष्ट वतावा, म्याणी कु वरी ।

नाक इया ढाका म्हे ॥

हे • जीवन मे दुर्गन्धी इसटी म्हे तो कव ही न जोई ।

हे • सङ्गै-गल्यै शव की ज्यू भभकै म्हारी रे चेतना मोई ॥२॥

हे मरम-सरस भोजन जो प्रतिदिन मन गमता मै करती ।

हे अक गाम उणस्यू लेकर मै इण मे प्रमुदित धरती ॥३॥

हे म्हारै जिमी ही आ प्रतिमा है म्हारै जिमो ही सावै ।

हे धृणा जेऊ स्यू, प्रम अक स्यू देग हृदय सिदावै ॥४॥

हे पुद्गल अशुभ देस यदि थारो जीवढो है घवरारै ।

हे तो अन्तर री जान्या सोलो तत्व हाथ आ ज्यावै ॥५॥

हे • म्हारी काया भी अशुची स्यू भरी पडी है मारी ।

हे • वयू इण मे आनकन वण्णा थे चेतनम्प विमारी ॥६॥

हे...पुद्गल स्यूं थे दृष्टि हटावो निज गुण नै अव जोवो ।
 हे...बीजली रो भवकार मिल्यो है चेतना रा मोती पोवो ॥७॥
 हे...काल अनन्तो बीत गयो है, बीत और भी ज्यासी ।
 हे...काम-भोग री आशा-बंछा छोड़्यां स्यूं सुख थासी ॥८॥
 हे...पूर्व तीसरै भव में आपां सातूं सहचर गूरा ।
 हैं...करी तपस्या तीव्र भाव स्यूं तोड़्या अघ-दल पूरा ॥९॥
 हे...माया राख हुई मैं कन्या, राजा थे छव हुआ ।
 हे...पूर्व स्नेह स्यूं प्रेरित होकर आया जूआ-जूआ ॥१०॥
 हे...सुण सारो वृत्तान्त हृदय में लेश्या शुभतर आवै ॥
 हे...ईहापोह हुयो सबकै मन जातिस्मरण तो पावै ॥११॥
 हे...खोल्या द्वार गर्भ-गृह रा जव, सब अकत्रित होग्या ।
 हे...मल्ली-वचन "महेन्द्र" सुणी नै, वै प्रतिबोधित होग्या ॥१२॥

: ६२ .

[तज—म्हारी हथेन्या रं थोच छाता]

गारी घटना रो भेद उतायो, म्हारी मानाये ।

अं गीत कुण गावं है ।

म्हारी जिनामा नै शान्न करावो, म्हारी मानाये ।

अं गीत कुण गावं है ॥

हे मुणारी मे चिनटो नोन है होग्यो टिा-छिा में मुग पाऊ ।

हे माधक ज्यू एकाग्र बणीनै ममय न व्यर्थ गमाऊ ॥१॥

१० पटोमी रं घर धीनटियो जायो, भूम-भूम हुनमावं ।

म्हारा बाबूडा । ते गीत बीरा गावं है ।

हे हमी सुणी रो दिा बां है हिन-मिन मोद मायें ॥२॥

म्हारा बाबूडा । अं गीत बीरा गावं है ।

गारी घटना रो भेद उताऊ, म्हारा बाबूडा ।

अं गीत बीरा गावं है ।

गारी जिनामा नै शान्न कराऊ, म्हारा बाबूडा ।

अं गीत बीरा गावं है ॥

११ जाम्यो उद भारं घर माता म्हारा नो मोद माया १

म्हारी माताण ।

- हे...हिलमिल सारा बोल कितायक गीत खुशी रा गाया ।
म्हारी माताअे ! ॥३॥
- हे...थारै जनम-दिवस रै अवसर धूमधाम बहु माची,
म्हारा बालूड़ा !
- हे...सारै परिकर नै कर भेलो तन-मन गहरी राची,
म्हारा बालूड़ा ॥४॥
- हे...माताजी ! अव ओ के होग्यो, गीत सुहाणा नहीं लागै
म्हारी माताए !
- हे...कानां में खील्यां-सी लागै, मन तो नहीं अनुरागै,
म्हारी माताअे ! ॥५॥
- हे...धीनड़ियो जनम्यो जो पहलां वीनै यमराज बुलायो,
म्हारा बालूड़ा !
- हे...वज्राघात लग्यो सारां रै पासो वो पलटायो,
म्हारा बालूड़ा ! ॥६॥
- हे...यम रो नाम सुणी नै चमक्यो, पूछै सरल पणा स्यूँ
म्हारी माताए !
- हे...कांई मै भी यम रै घर रो बोल पावणो होस्यूँ,
म्हारी माताए ! ॥७॥
- हे...जन्म-मरण री लाय लगी है, सारा बलता जावै,
म्हारा बालूड़ा !
- हे...नेमिनाथ रो शरण ग्रहण कर वै भव आग मिटावै,
म्हारा बालूड़ा ! ॥८॥
- हे...थावरचा सुत करै प्रतीक्षा नेमिनाथ कद आवै ।
हे...शीघ्र 'महेन्द्र' पधार्या जिनवर, आनन्द सारै थावै ॥९॥

६३

[तज—खमा खमा खमा रे कवर]

छोडो छोडो छोडो रे थावरचा ग कवर ।

जा वात अणगमती छोडो जी हो ।

मुग ग जै माघन ओटी-मी अवस्था,

माताजी म्यू नैह मत तोडो जी हो ॥

गृहकर म्हागी कर-छाया मे,

दिन दूणी मीज उडावो जी हो ।

नयम जीवन गिना है अलूणी

मन ना दृष्टि लगावो जी हो ॥१॥

गज्य-नोप ओ बारै मुपरन,

मेना मगली नाथे जी हो ।

ओटी-मोटी भूल-चूक भी,

गदेयन आगी माथे जी हो ॥२॥

घोने थावरचा-मुन नगिणय,

जानागी मै थागे जी हो ।

तान अनानक आग रक्षर,

तहो दुग होनी म्हागे जी हो ॥३॥

छोड़ो छोड़ो छोड़ो रे कंवर वसुदेव रा,
 आ बात अणगमती छोड़ो जी हो ।
 सुख रा ग्रै साधन दुख री निशाणी,
 शुभ भावना ने मत मोड़ो जी हो ॥
 आयां बुढ़ापो देही जर्जर,
 रंग रूप पलटासी जी हो ।
 नेह दिखावै जो न्यातीला,
 नेड़ा कोइयन आसी जी हो ॥४॥
 धन-दौलत अरु मान-प्रतिष्ठा,
 घणी-घणी थे देस्यो जी हो ।
 पण बुढ़ापै और मौत स्यू,
 कियां वचा थे लेस्यो जी हो ॥५॥
 प्रश्न सुणत ही सिर डोलायो,
 वासुदेव तव वोलै जी हो ।
 काम असंभव ओ तो सारो,
 कहो गांठ कुण खोलै जी हो ॥६॥
 दानव, मानव, देव इन्द्र भी,
 इण रै आगै हारै जी हो ।
 खपा 'महेन्द्र' सभी कर्मा नै,
 अपणा काम संवारै जी हो ॥७॥

६४

[तर्ज—खडी नीम कै नीचे]

मजग रहीजे मयम मे दिन रात तू ।
 जल्दी करजे मफल माधना अगज । विन व्याघात तू ॥
 बोरी वृषभ वहे ज्यू वहजे मदा साधना रो तू भार ।
 लारा जीवा रै मयम-जीवन रो भी वणजे आधार ।
 ममचित हो महजे परिपट-आघात तू ॥१॥
 हे प्रमाद पलिमन्थु माधना रो ओ पल-पल रखजे व्यान ।
 और कपाय योग भी समय-मय पर कर देव व्यवधान ।
 कभी न करजे या पर दृष्टि-निपात तू ॥२॥
 वन-पग्जिन रै चक्रव्यूह नै पीठ दियातो ही रहजे ।
 यज्ञ-पद री लिप्पा नै अगज । आत्म-भावना म्यू दहजे ।
 ममता रै वन्धन पर करजे घात तू ॥३॥
 जब तरु हे उत्थान, कर्म, बल, वीर्य पगक्रम-पुष्पाकार ।
 तत्र तक तप, स्वाध्याय, यान म्यू ज्योतित करजे निज आगार ।
 अनशनपूर्वक पाई चिन्मय-आय तू ॥४॥
 एक दृष्टि हो मदा सर्प की तरह, लक्ष्य नै पाणो है ।
 'मुनि महेन्द्र' कर पूर्ण चेतना, जागृत कदम उढाणो है ।
 माता गी आयाद रागजे रात तू ॥५॥

: ६५ :

तपस्या री भाचा

[तर्ज—झिर-मिर झिर-मिर मेवज]

विचरत-विचरत वीर जिणेसर,
 नगर रजागृह सहसा आवियाजी ।
 साथ में तपस्यां रो मोटो ए संघ है,
 मिनख हजारों रा मन लुभावियाजी ॥१॥

श्रावक श्रेणिक मगध नरेसरु,
 वीर जिणेसर वांदण आवियो जी ।
 साथ में चेलणा राणी भी आविया,
 सारां रै मन में आनन्द छावियोजी ॥२॥

गौतम गणधर लवध्यां रा आगर,
 ज्यांरै अंगूठै ईमरत वसै जी ।
 मगल-कारक नाम लेतां थकां,
 तपस्या में मनड़ो दूणो उल्लसैजी ॥३॥

तपसी तो सारा में धन्नो ए मोटको,
 वातां अनूठी जिण रै ख्यात री जी ।
 पल-पल सुध मन जप जपतां थकां,
 तपस्या में सगती आवै सांतरी जी ॥४॥

देवरी माहिवी महला मे भोगता,
 गालभदरजी छोटी पलक मे जी ।
 तप तप्यो घोर वै काया नै मोमनी,
 फैली हे महिमा ज्यागी मुनक मे जी ॥५॥

गन्धक तापम गीतम रा मस्रा,
 वीर प्रभु रै चरणा आविया जी ।
 झोरु नै तपस्या मे देह नै आपणी,
 मार मयम रौ चोग्यो पाविया जी ॥६॥

देवता बोध दे मयम रै भार्म मे,
 मेताग्ज नै तो जत्दी ल्याविया जी ।
 आजन्या मिर पर वीर जिणेम री,
 वारि तप, शिव पद पाविया जी ॥७॥

राजघराणै ग मुनि नन्दीपेणजी,
 तप री जगार्ड ज्योती महाधुनी जी ।
 हरिकेशी तपमी रै तप रै बिस्तार नै,
 गावै है आणै-टाणै महागुणी जी ॥८॥

और भी आपणै प्रोर तपमी हुवा,
 मुमग्ण ज्यारो मुग मपजै जी ।
 ध्यावता ध्यान वारो हुनै शुद्धता,
 ज्ञान-दर्शन ग मोती नीपजै जी ॥९॥

ढटण ऋषिवर नगर दुवारिका,
 माम छ मधुकरी मे घूमिया जी ।
 अभगरो दुप्पर तपमी रै तेह बी,
 जाहा-पाणी तो नही पाविया जी ॥१०॥

तपस्या री नीव दी आपणै संघ में,
 स्वाम भीखणजी आगम-बुद्धिया जी ।
 अमी, भीम, राम, शिव, कोदर तपसी ए,
 सुख मुनि तप-रण में भूझियाजी ॥११॥

पीथल, हीरजी, दीपजी, मोड़जी,
 तपस्यां में ज्यांरो अगुओ नाम है जी ।
 अणचांजी, भूरांजी, भूमांजी आददे,
 आतमा नै करि अभिराम है जी ॥१२॥

तपस्या रो नित उठ ध्यान ध्यातां थका,
 पोरस जागै 'महेन्द्र' सौ गुणो जी ।
 तपस्या है साधन करमां रै नाश रो,
 सारा ओ दृढ़मना पथ चुणो जी ॥१३॥

• ६६

तपस्या री भाचा

[तर्ज—म्हारी शील सुरगी चूनडी]

तपस्या कर्ण रो मन हुयो, म्हारा सेंठा है परिणाम जी ।
 म्हारी विम्या वरम री जात्मा तपस्या म्यू मोहै ही राज ।
 तपस्या म्यू मोहै आत्मा, जाणै कचन जटियो रतन जी ॥
 मन री निरमलता कर, जिणम्यू मोझै आत्म-काम जी ॥१॥

काल अनन्तो वीतग्यो तो भी तृप्त न होयो मन जी ।
 मेह जिती मिमरी भखी तो ही जीभ है जहर समान जी ॥२॥

साटा-मीठा-चरपरा कर्दया भोजन तो हर वार जी ।
 देह वधागी मोकली तो ही मरयो न आत्म-नार जी ॥३॥

देह मदा स्यू माहरी रोकै निज गुण वार-वार जी ।
 धूम्र इण लारैद मदा पोखू छिन-ठिन विविध प्रकार जी ॥४॥

देह रै खातिर मैं सदा टोयो पापा रो अतिभार जी ।
 भमता-भमना वीतग्यो म्हारो अमित समय सुखकार जी ॥५॥

आयो मोको हाथ मे मैं काढू देह रो सार जी ।
 कट तपस्या आकरी ज्यू उत्तना भव-पार जी ॥६॥

: ६८ :

[तर्ज—पाटी वरतो ल्यादै मनै]

म्हांरै आज पधार्या मुनिवर, ऊग्यो सोना रो है दिनकर ।
म्हे तो मोत्यां चोक पुरावां, गांवां हिलमिल आज वधावो जी ।

वरस्यो दूधां मेहड़लो ॥

थे तो धर्म धुरा रा धोरी, थे तो ममता-माया छोड़ी ।
थांरै चरणां शीश नमावां, गांवां हिलमिल आज वधावो जी ॥१॥

थे तो गांवां-गांवां घूमो, जनता री कमियां नै तूमो ।
थांरी वलिहारी म्हे जावां, गांवां हिलमिल आज वधावो जी ॥२॥

थांरी वाणी अमृत वरसै, सुण-सुण जन-मानस अति हरसै ।
थांरी मूरति देख लुभावां, गांवां हिलमिल आज वधावो जी ॥३॥

भौतिकता में भूल्यै जग नै, ल्यावो ज्ञान-दान दे मग में ।
थांरी पद-रज गीश चढ़ावां, गांवां हिलमिल आज वधावो जी ॥४॥

म्हांरो आज सुरंगो शहर, पाकर मुनि-चरणां री महर ।
सारा भूम-भूम हुलसांवां, गांवां हिलमिल आज वधावो जी ॥५॥

• ६६ :

[तजें—तुम्हीं मेरे मंदिर तुम्हीं मेरी पूजा]

जाते ही हैं जब कि हमको लुभाकर,
(तो) ले लो विदाई, ले लो विदाई ।

भग जा रहा है दिल श्रावको का
कैसे सहेगे हम यह जुदाई ॥

जिस दिन पवारे थे, खुशिया बहुत थी,
जनता के मन में पुलकन बहुत थी,
जाते हैं आज जब कि देखो न मक्के,
चेहरो पे कैसी उदासी है छाई ॥१॥

चार माम रहकर अलग जलाई,
भूलो को तुमने गह दिगाई,
त्याग-तपस्या के माध्यम से तुमने,
पाटी अनतिवना की है छाई ॥२॥

जहाँ भी पधारें, विजय खूब पाना,
भक्तों की भक्ति को भूल न जाना,
प्रस्थान-वेला में होकर दयालु,
दे दो न वापिस आने की माई ॥३॥

मुने । याचना है एक हमारी,
चाहते कृपा हम प्रतिपल तुम्हारी,
समाल लेते रहना हमारी,
छाये न जिममे पापों की काई ॥४॥

: ७० :

[तर्ज—सपनो]-

मिगसर वैरी वेगो क्यू आयो रे- ।

मिगसर तनै कवण बुलायो रे ।

लोग सैंकड़ां रा हुया दिलड़ा आज उदामा ।

धर्म-धुरा रा धारका करसी दूर प्रवास ॥१॥

च्याहं वखतां आवती जनता सारी दौड़ ।

करता सेवा आपरी पूरा करता कोड़ ॥२॥

अवै हुड़रका आवसी कद सुणस्यां व्याख्यान ।

तप-संयम री प्रेरणा पास्यां कद अस्लान ॥३॥

सुखे-सुखे तुम विचरज्यो, करज्यो गुरुवर-दर्श ।

करज्यो संघ-प्रभावना, पाज्यो नव उत्कर्ष ॥४॥

७१

[तर्ज—नामोराजा कुलदीपक चंद]

आज बिहार करै मुनिगज,
 हिवटो छनीजे है वेअन्दाज ।
 मन मे उदामी छाई घणी,
 पण आ निजोगी है वात वणी ॥१॥

मुनिवर ! आप मुखे विचरो,
 जनता मे त्रम ग भाव भरो ॥
 जिण दिन पधार्या हा मुनिवर आप,
 खिलग्यो नगर म्हारो टग्यो मताप ।
 आज हुया है माग भजन उदान,
 ओ दिन कदेयन जातो जी काग ॥२॥

वम धुग ग ये धारण हाग,
 जन-जन तै प्रतिप्रणहार ।
 घरम नी महिमा कग्यो घणी,
 मुलक-मूलक मे ये मुकुट-मणी ॥३॥

जैन धर्म रो करज्यो प्रसार,

वीर-वाणी रो करज्यो प्रचार ।

भीखणजी स्वामी रो पंथ,

जग में दीपावज्यो सहज भदन्त ॥४॥

ग्रामां-नगरां विचरत-काल,

भक्त जनां री करज्यो संभाल ।

भूल न जाज्यो म्हारो धार्मिक भाव,

म्हारै मन संयम रो है चाव ॥५॥

साधु-वन्दना

[नज—वधावो गावो पूज्य पधारणा]

परमेष्ठि-चरण मे मेरी है शत-शत वन्दना ।

तन्मय होकर मैं कर नित प्रात उठ अभिवन्दना ॥

इष्ट देव अरिहन्त हैं, गुरुवर सच्चे निर्ग्रन्थ रे ।

श्रीजिन-भाषित धर्म है, यह समकित का शुभ पन्थ रे ॥१॥

शोभित गुण बाग्दह मदा अरिहन्त देव भगवान रे ।

पचत्तीस वचनातिशय, अतिशय चौतीस प्रधान रे ॥२॥

पावन करे विदेह को, वे वीस-एक सी माठ रे ।

भरत-ऐश्वर्य क्षेत्र में होना जिन दश का ठाठ रे ॥३॥

चौमठ इन्द्रो मे मदा पूजित रहते अरिहन्त रे ।

स्य-गर-नागक पूज्य है, तीर्थंकर देव भदन्त रे ॥४॥

गतकालिक चौग्रीमिया मागी ही हैं श्रद्धेय रे ।

पल-पल मुंह पर नाचना, उनका ही है अभिधेय रे ॥५॥

निद्ध साध कर चेतना हुए जन्म-मरण मे युक्त रे ।

पन्द्रह भेदो मे हुए, है आठ गुणो मे युक्त रे ॥६॥

योग-वियोग न है जहाँ, सुग-दुग वा नहीं लगाव रे ।

हर्ष-शोक मे मुक्त है, केवल अपना ही नाव रे ॥७॥

आत्म-रमणता पूर्णतः जिनकी पल-पल अविराम रे ।

सिद्ध अनन्त सदा वने; मेरे तो शुभ विश्राम रे ॥८॥

प्रतिनिधि हैं अरिहन्त के गणधारक धर्माचार्य रे ।

शोभित गुण छत्तीस से उद्धारक जग के आर्य रे ॥९॥

सध-सारणा-वारणा में रहते सजग सदैव रे ।

करवाते शुभ साधना, हटवाते हैं अहमेव रे ॥१०॥

आगम-अध्येता प्रखर, अध्यापक, वाचक शिष्ट रे ।

उपाध्याय स्वाध्याय से शासन में लब्धप्रतिष्ठ रे ॥११॥

श्रुत के दानी वस्तुतः होते हैं दानी श्रेष्ठ रे ।

जिससे पाते हैं सुखद साधक पाथेय यथेष्ठ रे ॥१२॥

सतत साधना-लीन हैं, नित अप्रतिबन्ध विहार रे ।

सप्त-वीस गुण-युक्त हैं निर्मोही शान्त विचार रे ॥१३॥

दो हजार कोटी मुनि, मुनि अंक^१ हजार करोड़ रे ।

निकल पड़े संसार से सब ममता-माया छोड़ रे ॥१४॥

परमेष्ठी पचक सदा ध्याते कर मन एकाग्र रे ।

पाते शाश्वत सम्पदा, होते न कभी वे व्यग्र रे ॥१५॥

आधि-व्याधि होती नहीं, होती न प्रेत की मार रे ।

रहते सब अनुकूल ही, करते उसका सत्कार रे ॥१६॥

उन्नत आत्माएँ सभी हैं पांच पदों में लीन रे ।

फिरे भी कुछ उल्लेख मैं करता; होने स्वाधीन रे ॥१७॥

- जिनवर-चरणों में मेरी है शत-शत वन्दना ।
 ॥ तन्मय होकर मैं करूँ नित प्रात उठ अभिवन्दना ॥
 ऋषभदेव युगनाथ हैं, प्रभु अजित-जीत ससार रे ।
 ॥ मम्भव, अभिनन्दन प्रभु, हुए मुमतिनाथ भव-पार रे ॥१८॥
 पद्मप्रभ जिनराज का ले शरण हूँ भव-पीर रे ।
 श्रीमुपाय, चन्द्रप्रभु, मुविधि, शीतल शीतल नीर रे ॥१९॥
 श्री, श्रेयाम कृपानिधि, है वामुपूज्य जगदीश रे ।
 विमल, अनन्त महाप्रभु, जिन धम, शान्ति वागीश रे ॥२०॥
 कुन्धु, अर, मरती मदा, व्याल सुव्रत तीर्थेश रे ।
 नमि, नेमीश्वर, पार्श्व जिन, प्रभु वर्धमान सघेन रे ॥२१॥
 'लोच-प्रकाशक' हैं हुए, नीर्थकर ये चौबीस रे ।
 मानव-मानव का जहाँ भुक्ता श्रद्धा से शीश रे ॥२२॥
 ॥ -मीर्मधर स्वामी मदा करते जन-जन कल्याण रे ।
 युगमन्दिर, बाहु प्रभु, वार्मिकता के आस्थान रे ॥२३॥
 ॥ मुवाहु स्वामी करें शिव-मगल-भद्र सुजात रे ।
 स्वयंप्रभ जिनराज से होता है प्रभा-प्रपात रे ॥२४॥
 ॥ ऋषभानन हैं सातवे, अनन्तवीर्य गुण-धाम रे ।
 सूरप्रभ अरिहन्त का मैं ध्यान बहूँ हर याम रे ॥२५॥
 देव विशाल विशाल है, श्री वज्रधर आवार रे ।
 चन्द्रानन प्रभु चन्द्र ज्यो हैं शीतलता की वार रे ॥२६॥
 चन्द्रबाहु जग डष्ट हैं, सुख-दायक देव भुजग रे ।
 ॥ ईश्वर, नेमीश्वर-चरण वन्दन मेरा माष्टाग रे ॥२७॥

वीरसेन, महाभद्र जी, श्रीदेवयशा प्राणेश रे ।
अजितवीर्य का है मुझे स्वीकार सुखद आदेश रे ॥२८॥

विरहमान ये वीस हैं, गुन गाऊँ हो तल्लीन रे ।
पाऊँ मैं सर्वजता, तोड़ूँ अघ सब प्राचीन ॥२९॥

गणधर-चरणों में मेरी है शत-शत वन्दना ।
तन्मय होकर मैं करूँ नित प्रातः उठ अभिवन्दना ॥

गौतम स्वामी की स्मृति करती सहसा उन्मेष रे ।
अग्निभूति सबका करें नित क्षेम-कुशल सुविशेष रे ॥३०॥

वायुभूति हैं तीसरे, प्रभु व्यक्त व्यक्त चैतन्य रे ।
सुधर्मा प्रभु वीर के हैं पटधर गत-मालिन्य रे ॥३१॥

मण्डित-सुत मण्डित करे, आत्मा के भाव समस्त रे ।
मौर्यपुत्र जपता रहूँ होने को मैं आश्वस्त रे ॥३२॥

अकम्पित के ध्यान से होते कम्पित सब कर्म रे ।
अचलभ्राता अचलता का वतलाते हैं मर्म रे ॥३३॥

मेतार्य प्रभु मलिनता करते हैं मन की दूर रे ।
प्रभु प्रभास प्रभा करें, जिससे होऊँ सम-बूर रे ॥३४॥

गणधर ग्यारह वीर के हैं आस्था के आधार रे ।
शुद्ध भावना का करूँ प्रतिदिन नव-नव उपहार रे ॥३५॥

चवदह सौ बावन हुए, सब जिनवर के गणधार रे ।
पूजनीय वे विश्व के हैं समता-रस की धार रे ॥३६॥

मुनिवर-चरणो मे मेरी है जत-यत वन्दना ।
तन्मय होकर मैं कम, नित प्रात उठ अभिवन्दना ॥

भरत भूप ने महल मे पाया शुभ केवल जान रे ।

चक्री मगर प्रवृद्ध हो, सहसा पहुँचे निर्वाण रे ॥३७॥

मधवा नर-मधवा हुए, हुए चक्री मन्तकुमार रे ।

शान्ति, कुन्त्यु, अग्नायजी, चक्री अरु जिन अविदार रे ॥३८॥

पद्मोत्तर-सुन पद्मजी, श्री हरिमुत जय भूमीन रे ।

पद्म्यष्टाधिप वे हुए सर्वज्ञ सभी पृथ्वीन रे ॥३९॥

अचल, विजय बलदेव जी, श्रीभद्र, मुप्रभ मदीप रे ।

मुदर्शन-आनन्द जी, नन्दन, श्रीराम मुद्वीप रे ॥४०॥

मिद्ध हुए हैं राम ये, क्षय कर निज पाप ममग्र रे ।

ब्रह्मलोक मे हैं गये, बलभद्र तपस्वी उग्र रे ॥४१॥

बल भण्डार बाहुवनी, श्री रूपभसेन गणगाढ रे ।

अठाणव भाई सभी, मुनि सूर्ययन्त्रादिक आठ रे ॥४२॥

बलि, महाबल, अचन जी, प्राग्ण, पूरण, वसुमित्र रे ।

वैश्रवण, अभिचन्द्र जी हुए तपसी परम पवित्र रे ॥४३॥

चन्द्रायाम, प्रतिबुद्ध जी, मुनि सग 'र' स्वामी मन्त रे ।

दीन न हुए अदीन तो, मुनि जितशत्रु भगवन्त रे ॥४४॥

नन्दमित्र, मुनि नन्दन जी, मुनिगज मुमित्र नुमित्र रे ।

भानुमित्र, वनमित्र जी, मुनि अमर अधम-अवित्र रे ॥४५॥

अमरमेन, महामेन जी, मुनिवर ये जाठ विविष्ट रे ।

मन्त्री जिनके साथ मे हुए दीक्षित अष्टानिष्ठ रे ॥४६॥

भद्रदशार्ण नृपाल ने छोड़ा निज का अभिमान रे ।
पुण्डरीक ने चेतना का किया शीघ्र अवधान रे ॥६६॥

पुण्यपाल, गागेयजी, जिनपाल, सुवाहुकुमार रे ।

समुद्रपाल मुनि ने किया सब पापों का प्रतिकार रे ॥७०॥

गर्दभाली मुनि ने किया संयति को संयम दान रे ।

साल मुनि, महासालजी, पीठर, गागली महान रे ॥७१॥

पुर साकेत चिलात ने लिए भावरत्न तत्काल रे ।

शख, अलक्ष्य महीपने है त्याग दिया जंजाल रे ॥७२॥

सतिवर-चरणों में मेरी है शत-शत वन्दना ।

तन्मय होकर मैं करूँ नित-प्रातः उठ अभिवन्दना ॥

मरुदेवा ने है किया सबसे पहले कल्याण रे ।

इस अवसर्पण काल में पहला था मोक्ष-प्रयाण रे ॥७३॥

भगिनी ब्राह्मी, सुन्दरी, कौशल्या, सीता शिष्ट रे ।

राजिमती, कुन्ती सती, थी द्रुपद-सुता सतनिष्ठ रे ॥७४॥

चन्दनवाला वीर की शिष्याओं में थी ज्येष्ठ रे ।

मृगावती, सुलसा, शिवा, दमयन्ती अतिशय श्रेष्ठ रे ॥७५॥

प्रभावती, पद्मावती, पुष्पचूला सती प्रसिद्ध रे ।

सुभद्रा भद्रानना, सोलह सतियां समृद्ध रे ॥७६॥

देवानन्दा, रेवती, जिज्ञासु जयन्ती खास रे ।

यशोमती 'रु सुदर्शना ने किया ज्ञान-अभ्यास रे ॥७७॥

गुरुवर-चरणों में मेरी है शत-शत वन्दना ।

तन्मय होकर मैं करूँ नित-प्रातः उठ अभिवन्दना ॥

जम्बू स्वामी का बना है एक नया उत्तिष्ठाम रे ।

आठ रमणिया छोड़कर, छोड़ी वैभव की प्याम रे ॥७८॥

प्रभव, शयभव सूरि ने पाया था आत्म-प्रकाश रे ।

यशोभद्र, मभूति ने किया अद्भुत मध-विक्राम रे ॥७९॥

मद्रवाहु श्रुतकेवली, श्री स्थूलिभद्र मुविनीत रे ।

गणनायक श्री महागिरि, हैं आर्य मुहस्ति पुनीत रे ॥८०॥

गुणसुन्दर, श्यामार्य जी, प्रभु स्कन्दिन, रेवतिमित्र रे ।

धर्म, भद्रगुप्त सूरिवर, श्रीगुप्त सूरि मुपवित्र रे ॥८१॥

देव वज्र अन्तिम हुए, दश पूर्वी पचम काल रे ।

रक्षित प्रभु अनुयोग के मस्कर्ता हुए विज्ञान रे ॥८२॥

दुर्बलिका पुण्यमित्र जी, हैं वज्रमेन गणिगज रे ।

देवधि तक पूज्य के चरणों में वन्दन आज रे ॥८३॥

पुरपोत्तम भिद्युप्रभु, गण-नेता भार्गीमाल रे ।

ग्रहचारी ऋषिगयजी, जयजग तेरापथ-भाल रे ॥८४॥

मधवा, माणिक पूज्यजी, तेजस्वी टातिमनन्द रे ।

कानू हैं जीवन-जटो, प्रभु तुलसी पूनमनन्द रे ॥८५॥

मुनिवर-चरणों में मेरी है धन-धन वन्दना ।

तन्मय होकर मैं वरूँ नित प्रात उठ अनियन्दना ॥

मतयुगी, मुनि गेनमी, मुनि बेणी, मुनिव-हेम रे ।

मुनि स्वप्न, कालू बटे, मन्त्री मुनि मगन मप्रेम रे ॥८६॥

तेरापथ के स्नम्भ हैं, मुनि पाह्नुद, धिग्पाठ रे ।

टोकर अरुणायजी, मुनि रंगा, जयान दसाठ रे ॥८७॥

अमीचंद, ऋषि भीमजी, मुनि राम और जिव स्वामरे ।
 कोदर तपसी आदि का शुभ नाम सदा विश्राम रे ॥८८॥
 हीर, उभय पीथल मुनि, मोतीजी, मुनि वर्धमान रे ।
 दीप, अनोप'रू, खूबजी, मुनि मोड, चोथ गण-ज्ञान रे ॥८९॥
 श्याम, राम भाई युगल, मुनि अखयराम, मुन्वराम रे ।
 छजमल, दुलीचन्दजी, जिव, शम्भू, मुनिवर राम रे ॥९०॥
 मुनिवर श्रीरणजीतजी, मुनि वच्छराज'रू हुलास रे ।
 वृद्धिचन्द्र तपसी बड़े, मुनि सुख का सुख में वास रे ॥९१॥
 सतिवर-चरणों में मेरी है गत-गत वन्दना ।
 तन्मय होकर मैं करूँ नित प्रातः उठ अभिवन्दना ॥
 कुशलांजी, वरजू सती, हीरां, दीपां शुभ आव रे ।
 सरदारांजी महासती, पाई अति ख्याति गुलाव रे ॥९२॥
 नोलांजी, जेठां सती, श्रीकानकंवर प्रख्यात रे ।
 भूमकूजी साची सती, लाडां की अनुपम वात रे ॥९३॥
 जय-जननी कल्लू सती, छोगां कालू की मात रे ।
 ऋजुमना वदनां सती, जिनका जीवन अवदात रे ॥९४॥
 गंगाजी, जेठां सती, हरखूजी अरू मिणगार रे ।
 जोतांजी, दोलां सती, जानांजी ज्ञान-विहार रे ॥९५॥
 हस्तूजी, रंभा उभय, मक्खू'रू मलूकां प्राज रे ।
 सुन्दरजी, झूमां सती, चम्पा उत्कट वैराग्य रे ॥९६॥
 अणचांजी ने है किया सबसे अति दुष्कर कार रे ।
 महाभद्रोत्तर तप किया, भूरांजी ने स्वीकार रे ॥९७॥

पन्नाजी, मीरा मती, आर्या भक्तूजी जादि रे ।

उग्र तपस्या-रत हैं, पाती हैं चित्त-ममाधि रे ॥६८॥

साधु-वन्दना कीवनी, यह विस्तृत गीति ग्साल रे ।

प्रतिदिन शुभमन जाप मे, कटता कर्मों का जाल रे ॥६९॥

दो हजार चौबीस वा है ग्गनदुर्ग चउमास रे ।

माताकागी क्षेत्र है, नव-नव है नित उल्लास रे ॥७०॥

फैल रही शुभ प्रभ की यहाँ चारो ओर सुवास रे ।

मुनि 'महेन्द्र' गुरुदेव के इगित से सफर प्रवामरे ॥७१॥